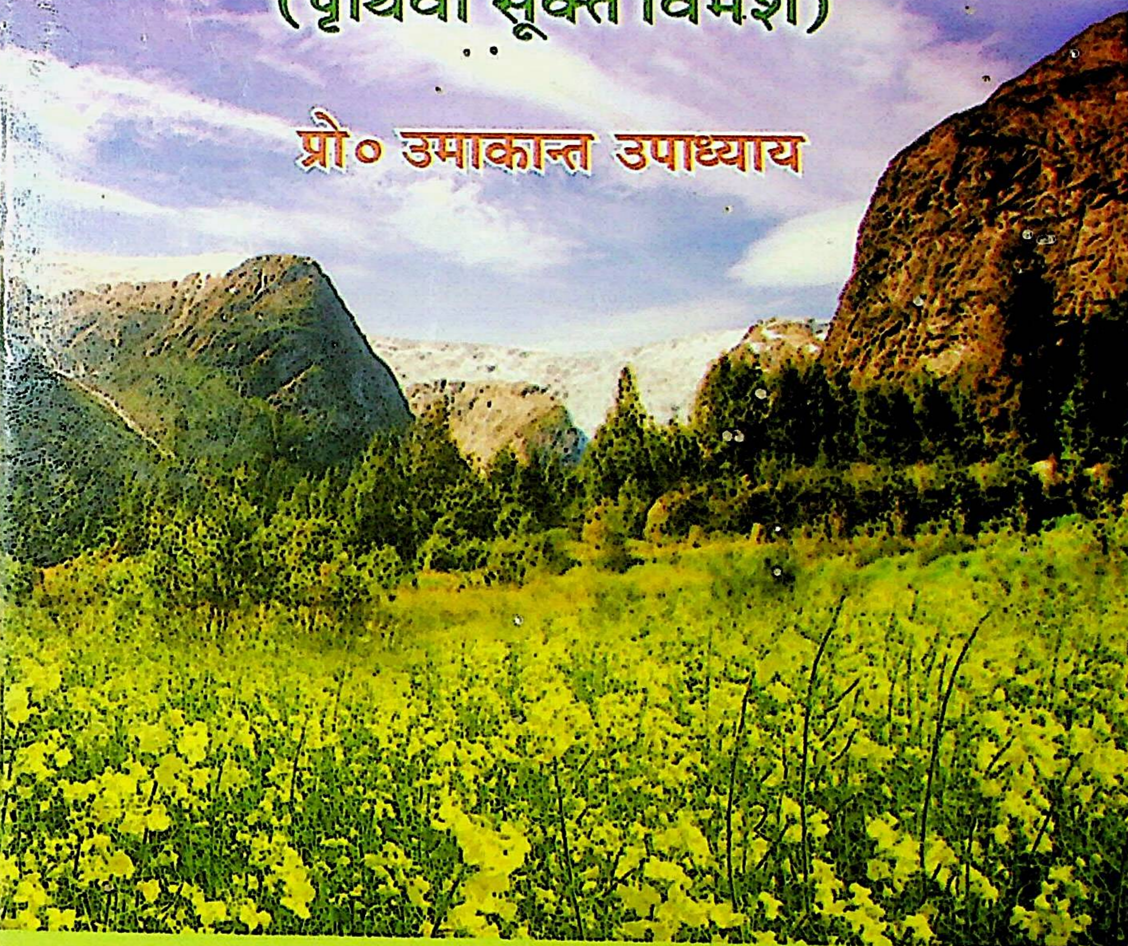
ओ३म्

मातृभूमि वैभवम्

(पृथिवी सूक्त विमर्श)

प्रो० उमाकान्त उपाध्याय



आर्य समाज कलकत्ता
१९, विधान सरणी, कोलकाता-७००००६

॥ ओ३म् ॥

मातृभूमि वैभवम्

(पृथिवी सूक्त विमर्श)

॥ ओ३म् ॥

मातृभूमि वैभवम्

(पृथिवी सूक्त विमर्श)



प्रो० उमाकान्त उपाध्याय



प्रकाशक :

आर्य समाज कलकत्ता

१९, विधान सरणी, कोलकाता-७००००६

कोलकाता-७०० ००६

प्रकाशक :
श्री सत्यप्रकाश जायसवाल
मंत्री
आर्य समाज कलकत्ता
१९, विधान सरणी,
कोलकाता-७०० ००६

प्रथम संस्करण : ११०० प्रतियाँ

मूल्य : १२५) रुपये मात्र

अगस्त, २०१२

मुद्रक :
एसोशियेटेड आर्ट प्रिन्टर्स
६/२, विडन रो,
कोलकाता-७०० ००६

स्मृति-शेष :

धन्यास्ते सुकृतिनः रस सिद्धाः कवीश्वराः ।
नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयम् ।।



डॉ० वाचस्पति उपाध्याय

देहान्त के समय श्री लालबहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ-मानित विश्वविद्यालय के उप-कुलपति

यत्राऽपि कुत्राऽपि गता भवन्ति,
हंसा मही मण्डल मण्डनाय ।
हानिस्तु तेषां हि सरोवराणाम्,
येषां मरालैः सह विप्रयोगः ।।

हंस तो जहां कहीं भी जायेंगे, वहां की शोभा बढ़ायेंगे, दुर्भाग्य तो उनका है जिनसे हंस का वियोग हो गया ।

*

''पुत्र बिछोहा जगत् में मत दीजौ करतार ।''

उमाकान्त (काका)
प्रभावती (मातृकल्पा-काकी)

प्रकाशकीय

वेद समस्त ज्ञान का मूल है । ईश्वरीय ज्ञान होने के कारण वेद मानव जीवन के लिए सदा से ही उपादेय रहा है । भगवान् मनु ने **'सर्व ज्ञान मयो हि सः'** कहकर वेद को समस्त ज्ञान-विज्ञान का भण्डार माना है । महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने आर्य समाज के तृतीय नियम में यह उद्घोष किया है कि **'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है । वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है ।'** यही कारण है कि आर्य समाज वेदज्ञान को जन सामान्य तक पहुचाने में सदैव प्रयत्नशील रहता है ।

वेदों में ईश्वरोपासना, सदाचार, भौतिक विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, शिक्षा, यज्ञ, कृषि, राज्य-व्यवस्था, व्यापार, पशुपालन, उद्योग, व्यक्तिगत-पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन तथा आदर्श गृहस्थ इत्यादि विषयों का उपदेश प्राप्त होता है । अथर्ववेद के पृथिवी सूक्त में मातृभूमि व राष्ट्र क्या है, कौन-कौन से गुण राष्ट्र को धारण करते हैं, इसका विशद वर्णन प्राप्त होता है ।

हमारे देश में राज्य-व्यवस्था जब तक वेदों के अनुसार चलती रही तब तक भारत विश्वगुरु कहलाता था । वेदों से विमुख होने के कारण हम पतन की ओर गिरते चल गये । भारत पराधीन ही तब हुआ जब इस देश से वेदानुसार व्यवस्था जाती रही । पाश्चात्य विद्वानों की यह धारणा है कि भारत कभी एक राष्ट्र के रूप में नहीं रहा । यहाँ कभी राष्ट्र की अवधारणा ही नहीं रही है । प्रस्तुत पुस्तक **'मातृभूमि वैभवम्'** में विद्वान् लेखक **आचार्य पं उमाकान्त जी उपाध्याय** ने अथर्ववेद के पृथिवी सूक्त में वर्णित राष्ट्र की अवधारणा तथा जिन विशिष्ट गुणों के कारण एक राष्ट्र महान् बनता है इसका वर्णन विस्तार से अत्यन्त सरल भाषा में किया है ।

आचार्य उमाकान्त जी उपाध्याय आर्य समाज कलकत्ता के आचार्य हैं। आप वेदों के आधिकारिक विद्वान् एवं एक सिद्धहस्त लेखक हैं। वेद मन्त्रों की व्याख्या की कई पुस्तकें आपकी प्रकाशित हो चुकी हैं। आपकी कई पुस्तकों के एकाधिक संस्करण भी प्रकाशित हुए हैं। गूढ़ से गूढ़ विषयों को बड़ी सरलता से श्रोताओं और पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर देना आपकी विशेषता है। आचार्य जी विगत कई वर्षों से शारीरिक रुग्णता के कारण शय्या पर हैं परन्तु अपने स्वाध्याय धर्म से कभी विरत नहीं हुए हैं। **'संन्यसेत् सर्व कर्माणि वेदं एकं न संन्यसेत्'** संन्यासी सब कर्मों का न्यास कर सकता है परन्तु वेद का नहीं। इस वचन को आत्मसात् कर अपने गृह पर ही संन्यस्त जीवन व्यतीत करते हुए आचार्य जी वेदों से ऐसे मोती-मणियों को चुन-चुनकर सुधी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने नें संलग्न हैं।

आर्य समाज कलकत्ता को इस पुस्तक के प्रकाशन का अवसर उपलब्ध करवाकर आचार्य जी ने साहित्य सेवा का जो अवसर हमें प्रदान किया है उसके लिए हम आचार्य जी के कृतज्ञ हैं तथा उनके प्रति हार्दिक आभार प्रकट करते हैं। **'मातृभूमि वैभवम्'** पुस्तक लोगों में अपनी संस्कृति, मातृभूमि एवं राष्ट्रीय स्वाभिमान के प्रति अत्यधिक आकर्षण एवं अनुराग उत्पन्न करेगा ऐसा हमारा विश्वास है। इति।

सत्य प्रकाश जायसवाल
मन्त्री
आर्य समाज कलकत्ता

भूमिका

वेद माता का प्रचार जनसाधारण में हो सके और वेद मंत्रों को पढ़ने, समझने और उनमें निहित भावों को जनसाधारण में प्रचार मिल सके, इस उद्देश्य से निम्नलिखित ग्रन्थों को हमने अब तक लिखा है और ये सभी ग्रन्थ आर्य समाज कलकत्ता ने प्रकाशित किये हैं—

(१) प्रार्थना प्रवचन—इस ग्रन्थ में "विश्वानि देव" आदि आठ प्रार्थना मंत्रों का प्रवचनात्मक व्याख्यान किया है और यह ग्रन्थ पर्याप्त जनप्रिय रहा है। इसका दूसरा संस्करण भी प्रकाशित हुआ है।

(२) वेद-वैभव—यह पर्याप्त बड़ा ग्रन्थ है और इसमें भी वेद मंत्रों की सरल हृदयग्राही व्याख्या की गई है। इस ग्रंथ का भी यथेष्ट स्वागत हुआ है।

(३) वेद-वन्दन—वेद-वैभव को विद्वानों ने और जनसाधारण ने जिस प्रकार अपनाया और हमें उत्साह-वर्द्धक प्रतिक्रिया मिलती रही, इससे उत्साहित होकर हमने "वेद-वन्दन" ग्रन्थ लिखा। इसमें भी वेद वैभव की ही पद्धति पर हमने व्याख्या लिखी है। इसका भी विद्वानों और जनता ने अच्छा स्वागत किया है।

(४) वेद-वीथिका—इस पुस्तक में वेद मन्त्र, मन्त्र का शब्दार्थ, मंत्र में निहित व्याख्यान बिन्दु और मन्त्र की संक्षिप्त व्याख्या लिखी है। कई लोग विस्तृत व्याख्याओं की अपेक्षा संक्षिप्त व्याख्याओं को पसन्द करते हैं। इस पुस्तक का भी अच्छा स्वागत हुआ है।

(५) ऋग्० भा०भू०—राजप्रजा धर्म प्रबोध भाष्य—यह अध्ययनशील विद्वानों के उपयोग की पुस्तक है।

(६) वेद और स्वामी दयानन्द—यह पुस्तक आकार में छोटी है किन्तु जनसाधारण के बड़े उपयोग की है। वेद के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की जानकारियों से भरपूर है। आचार्य सायण, आचार्य उव्वट और आचार्य महीधर के भाष्यों के साथ महर्षि स्वमी दयानन्द क भाष्य की तुलना भी बानगी के रूप में दी है। इस पुस्तक का अच्छा स्वागत हुआ है।

(७) वेद में गौरक्षा या गो वध ?—यह प्रमाणों से भरपूर विवादात्मक पुस्तक है। इसकी कई हजार प्रतियाँ छप चुकी हैं।

अब हमारी वेद सेवा का अष्टम पुष्प

मातृभूमि-वैभवम् (पृथिवी सूक्त विमर्श)

आपके हाथ में है । यह दीर्घकाल का संकल्प कृतकार्य हुआ है। परमकरुणामय जगदीश्वर की अपार अनुकम्पा से यह कार्य सम्पन्न हो सका है । परम प्रभु परमेश्वर की यह अनुकम्पा कि बिस्तरे पर लेटा-लेटा भी यह कार्य सम्पन्न कर सका । इसमें विद्वानों और सहयोगियों का विशेष रूप से सहयोग है । आर्य समाज क़ोलकाता ने हमें आयु० गौरव गुप्त को लेखक के रूप में नियुक्त किया, इन्हें हार्दिक आशीर्वाद ।

डा० महावीर अग्रवाल, उप-कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, ने अत्यन्त आत्मीयता और तत्परता के साथ भूमि सूक्त सम्बन्धी साहित्य, वेदमार्तण्ड आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति लिखित **'वेद का राष्ट्रीय गीत'** जैसा महान् ग्रंथ और श्रीपाद दामोदर सातवलेकर का सुबोध भाष्य हमें उपलब्ध कराया है । हम उनके इस वेद विद्या के प्रचार के प्रति लगन को श्लाघनीय समझते हैं । उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञ हूँ । हमने और भी जो कुछ पृथिवी सूक्त पर देखा है सभी विद्वानों को कृतज्ञता पूर्वक नमन करता हूँ —नमः ऋषिभ्यः पूर्वेभ्यः ।

हमारे ग्रन्थों के प्रकाशन में आर्य समाज कोलकाता के सदस्य और अधिकारीगण सदा उत्साहित रहते है । प्रधान श्री मनीराम आर्य, मंत्री श्री सत्यप्रकाश जायसवाल, कोषाध्यक्ष श्री मदन लाल सेठ, प्रकाशन समिति के संयोजक श्री श्रीराम आर्य, वरिष्ठ अधिकारी श्री राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल, श्री अच्छेलाल सेठ, श्री दीपक़ आर्य, श्री छोटेलाल सेठ सभी प्रकाशन के लिए तत्पर रहते हैं, सभी का धन्यवाद ।

हमारे सुपुत्र आयुष्मान् योगेशराज ने पुस्तक को सजाने, प्रूफ पढ़ने आदि में पूरी तन्मयता से अपने दायित्व का निर्वहन किया है, उनके लिए मंगलकामना, प्रभु उनकी रुचि में वृद्धि करे, यह प्रार्थना है।

एसोशिएटेड आर्ट प्रिण्टर्स के स्वामी श्री चन्द्रकान्त झा ने पूरी तन्मयता से ग्रंथ के मुद्रण में रुचि ली है। उन्हें हार्दिक धन्यवाद। सभी सहयोगियों के प्रति कृतज्ञ हूँ—दो वर्षों से अधिक हो गये, बिस्तर पर लेटा हूँ, फिर भी ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है, परम कृपालु परमेश्वर का कोटिशः धन्यवाद है।

वेद का सेवक :
उमाकान्त उपाध्याय

कार्तिक शु० चतुर्दशी, २०६९ वि०
२७ नवम्बर, २०१२ ई०
कलकत्ता।

मन्त्रानुक्रम

—०—

ओ३म्

मातृभूमि वैभवम्

(पृथ्वी सूक्त विमर्श)

अथर्व वेद

अथ द्वादशं काण्डम्

प्रथमं सूक्तम्

ऋषिः अथर्वा

देवता भूमिः

छन्दः त्रिष्टुप

यह प्रयास क्यों ?

हमारा देश हजारों वर्षों से राजनीतिक दासता का दंश भुगत रहा था। शक, हूण, पठान, तुर्क, कई जातियाँ तो यहीं घुलमिल कर इसी देश के जातीय जीवन का अंग बन गयीं। इस्लाम के साथ कुछ जातियाँ आयीं, बड़ी बर्बर, निष्ठुर, हिंसक रहीं। उनमें लूटना-पीटना अधिक था। वे यहाँ की अपार धन-सम्पदा लूट कर अपने मूल के देशों को लौट जाती थीं। वे बर्बर थीं, असभ्य थीं, कपटी भी थीं किन्तु उनका राजनीतिक कपट कम था, उनका मुख्य उद्देश्य यहाँ की अपार सम्पदा को लूटना ही था। मुसलमानों ने यहां अपने राज्य की नींव डाली किन्तु उनमें राजनीतिक चालाकी और धोखाधड़ी कम थी। मुगलों में अकबर आदि कुछ चतुर राजा हुए किन्तु उन्होंने हमारे धार्मिक ग्रन्थों को जलाया, नष्ट किया। मन्दिर तोड़े, मूर्त्तियाँ तोड़ीं किन्तु हमारे धार्मिक और सांस्कृतिक स्वरूप में चालाकी से मिश्रण अधिक नहीं किया और न हीं धोखे से हमारे सांस्कृतिक और धार्मिक स्वरूप को नष्ट किया। फलतः हम अपनी धार्मिक और सांस्कृतिक श्रेष्ठता के विश्वासी बने रहे। हमने इन आक्रान्ताओं को अपने से बढ़-चढ़कर कभी न माना।

यूरोप की जातियों ने व्यवसायी बनकर भारतवर्ष में प्रवेश किया और यहाँ के लोगों को सरल, सीधा, ईमानदार और विपुल सम्पत्ति का स्वामी पाया। उन्होंने यह देखा कि सरल सम्पन्न भारतवासियों को आसानी से ठगा जा सकता है। उन्होंने कई प्रकार की छल-छद्मपूर्ण नीतियां अपनायीं। वे कहने लगे कि यूरोप की श्वेत जातियाँ शासन करने के लिए हैं और एशिया की काली नस्ल के लोग शासित रहने के लिए हैं। उन्होंने कई झूठी छलपूर्ण नीतियों का प्रचार आरम्भ

किया । उन्होंने कई तरह का प्रचार आरम्भ किया । उन्होंने कई तरह के छलपूर्ण सिद्धान्तों का प्रचार करना आरम्भ कर दिया । उन्होंने कहना आरम्भ किया कि भारत अनेक संस्कृतियां, भाषाओं और राष्ट्रों का देश है । सम्पूर्ण भारतवर्ष—कश्मीर हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक तथा ब्रह्मपुत्र से लेकर पश्चिम महासागर मुलतान आदि तक यह कभी एक राष्ट्र नहीं था । उन्होंने हमें सिखाया कि हम सांस्कृतिक और राष्ट्रीय रूप से यूरोपीय जातियों से बहुत पिछड़े हुए हैं । उन्होंने सिखाया कि हमारे देश में जन्मभूमि और राष्ट्रीयता की अवधारणा ही कभी नहीं थी । राष्ट्रीय रूप में यह बड़ी भारी चोट थीं । उन्होंने हमें पढ़ाया कि अंग्रेजों ने सम्पूर्ण भारतवर्ष को एक राष्ट्र बनाया ।

इंग्लैंड ने भारतवर्ष की शिक्षा की नीति निर्धारित करने के लिए लॉर्ड मैकॉले को लगाया । मैकॉले बड़ा चतुर चण्ठ ईसाई मिशनरी था। उसने अपने पत्रों में बहुत सुस्पष्ट घोषणा की कि शीघ्र ही भारतवर्ष में एक ऐसा वर्ग बन जायेगा जिसका शरीर तो भारतीय होगा किन्तु सोच, चिन्तन, रुचि, विचार सब अंग्रेजों का हो जायेगा । यह बहुत बलपूर्वक कहा जाने लगा कि भारतवर्ष में जन्म भूमि और राष्ट्रवाद की भावना कभी भी नहीं थी । सारे भारतीय साहित्य में न राष्ट्र है न जन्मभूमि की भावना है ।

भारतवर्ष में एक भावना बड़ी तीव्रता से काम कर रही थी—

''यद्यपि स्वर्णमयी लंका, लक्ष्मण मह्यम् न रोचते ।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ।।''

इसका भाव यह हुआ कि लंका में रावण की मृत्यु के पश्चात् लंका विजय पर श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा था कि लक्ष्मण रावण की लंका भले ही सोने की हो किन्तु मेरे लिए तो अपनी जन्मभूमि अयोध्या स्वर्ग से भी बढ़कर है । यह उन लोगों के लिए बड़ा करारा दो टूक उत्तर था जो यह कहते थे कि भारतवर्ष में जन्मभूमि की अवधारणा ही नहीं

है । इधर आर्य समाज के विद्वान् वेदों के प्रचार पर तन्मयता से लगे थे । स्वामी दयानन्द जी ने आर्य समाज की स्थापना की और स्वराज्य, स्वतंत्रता, जन्मभूमि, राष्ट्रवाद इन सभी अवधारणाओं को बल पूर्वक स्थापित किया । आर्य समाज की स्थापना स्वामी दयानन्द जी ने १८७५ ई० में की थी । उसी समय कालजयी ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश का प्रथम संस्करण भी प्रकाशित हुआ था । उसमें भी स्वामी दयानन्द जी ने स्वराज्य, स्वसंस्कृति, भारतीय सभ्यता, ऋषियों का ज्ञान-विज्ञान और वेदों की महिमा का जमकर समर्थन किया था । उन्होंने एक प्रसंग पर नमक कर, stamp duty, जंगलात के उत्पादन आदि पर चुंगी का विरोध किया था । उस युग में आर्य समाजी होने का अर्थ था स्वदेश भक्त, भारतवर्ष की संस्कृति का भक्त आदि । आर्य समाज के विद्वानों ने भारतीय साहित्य और विशेष रूप से वेदों का गहन अध्ययन करके यह प्रमाणित कर दिया कि वेदों में पूरी राजनीति है, प्रखर राष्ट्रवाद है और मातृभूमि की भावना भी बड़े उग्र रूप में "पृथिवी सूक्त" में आयी है—

"माता भूमिः, पुत्रोऽहम् पृथिव्याः"

भूमि हमारी माता है और हम भूमि माता के सन्तान हैं—"भूमि हमारी, धरती अपनी, हम धरती के लाल ।"

आर्य समाज के विद्वानों ने चारों वेदों पर भाष्य लिखे । श्री पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ने अथर्ववेद पर भाष्य लिखा और सुनने में यह आता है कि भारत सरकार ने, अंग्रेजों की सरकार ने उनकी पुस्तक पर प्रतिबन्ध लगा दिया । कहा तो यह भी जाता है कि यह पृथिवी सूक्त पर भाष्य लिखने के कारण श्री सातवलेकर जी को कारावास का दण्ड भी दिया गया था ।

यह सब हमने समय-समय पर सुन रखा था । हमारे मन में पृथिवी सूक्त पर विचार विमर्श करने की भावना धीमे-धीमे पनप रही थी ।

इसी बीच सन् १९८० ई० में लन्दन में अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन का आयोजन हुआ । उस सम्मेलन में सर्व धर्म सम्मेलन में बोलने के लिए हमें विशेष रूप से आमन्त्रित किया गया था । इस महासम्मेलन में इसी पृथिवी सूक्त से विशेष रूप से आहुतियां डाली जा रही थीं । पण्डित लोग माईक के ऊपर पृथिवी सूक्त के मन्त्रों का पाठ कर रहे थे । वहीं हमारे मन में यह विचार कौंध उठा कि इसी पृथिवी सूक्त के भाष्य को अंग्रेजों की सरकार ने भारतवर्ष की धरती पर प्रतिबन्धित कर दिया था और इसी पृथिवी सूक्त के भाष्यकार पण्डित सातवलेकर जी को कारावास का दण्ड भोगना पड़ा था और आज क्या सौभाग्य का दिन है कि भारतवर्ष के सपूतों ने इसी पृथिवी सूक्त से इंगलैंड की धरती पर महायज्ञ का अनुष्ठान कर डाला है । भावुक मन तर्क की अपेक्षा भावनाओं में अधिक रमता है और उन्हीं भावनाओं से प्रेरित होकर हमने अपने संस्मरणात्मक ग्रन्थ **''व्यतीत के यश की धरोहर''** में अति उत्साह के साथ इस पर लिखा है ।

इधर यहां भारतवर्ष में कुछ इस विचारधारा के लोग पनप उठे कि उन्हें भारतवर्ष की तौहीन में सुख मिलने लगा । इनमें ऐसे लोगों को पहले तो यूरोप की बड़ाई में सुख मिलता था । इन लोगों ने खूब प्रचार किया कि भारतवर्ष में न कभी मातृभूमि की धारणा थी और न राष्ट्रवाद की धारणा थी, उलटे यह प्रचार होने लगा कि आर्य जाति ने भारतवर्ष के ऊपर आक्रमण किया और आदिवासियों को पराजित करके भगा दिया । भारतवर्ष में सिन्धुघाटी की सभ्यता या इसी प्रकार के दूसरे ऐतिहासिक अवशेष आर्यों के नहीं हैं । अनेक और दूसरी विचारधारा साम्यवादियों से अनुप्राणित होकर जोर पकड़ने लगी । ये कम्युनिस्ट विचारधारा के लोग मुख्य रूप से रूस और चीन के भक्त हैं । इनका केन्द्र दिल्ली में जवाहर लाल नेहरू यूनिवर्सिटी में पनप उठा । इस विचारधारा के लोग भारतवर्ष की स्वर्णिम संस्कृति,

सभ्यता, साहित्य और राष्ट्रीयता की अवमानना में सुख पाने लगे । इन सबका दो टूक उत्तर भूमिसूक्त में उपलब्ध होता है ।

हम सोचा करते थे कि यदि परमेश्वर की कृपा से पृथिवी सूक्त का विमर्श लिखा जा सके तो उसमें प्रखर राष्ट्रवाद और मातृभूमि की अवधारणा बहुत सुस्पष्ट है । वेद मानवजाति का आदिमतम सांस्कृतिक दस्तावेज है । इनसे अधिक प्राचीन संसार में कोई साहित्य नहीं है । अतः मनुष्य की आदि सभ्यता में मातृभूमि राष्ट्रवाद स्वराज मातृभूमि के प्रति पूज्य-पूजन भाव सुलभ है । पृथिवी सूक्त में विदेशी आक्रान्ताओं को कुचल देने का प्रखर आदेश है । अपनी आवश्यकताओं के लिए हम धरती माता का खनन करते हैं, उसका दोहन नहीं करते हैं । उस सब हानि को भी पूर्ण करने की भावना पृथिवी सूक्त में निहित है ।

बीच-बीच में विद्वान् पण्डितों और विचारशील राष्ट्रभक्त मित्रों में भी पृथिवी सूक्त की चर्चा हो जाती थी । यह सब हमें समय-समय पर प्रेरित करता रहा है कि हम भी इस सूक्त पर कुछ चिन्तन वेद भक्तों के सम्मुख प्रकट करें और उसी का सुफल है यह **''पृथिवी सूक्त विमर्श''** नामक प्रयास ।

परम दयालु परमेश्वर की कृपा से यह कार्य सम्पन्न हुआ । शरीर से असमर्थ होने के बाद भी हम यथाशक्ति, यथाभक्ति यह विमर्श पूर्ण कर सके, एतदर्थ जगन्नियता जगदीश्वर को कोटिशः धन्यवाद है ।

*

प्रस्तावना

वैदिक साहित्य में अथर्ववेद का बारहवां काण्ड ''पृथिवी सूक्त'' के नाम से प्रसिद्ध है। इस सूक्त में पृथिवी माता के उपकारों की महिमा का वर्णन है। इस काण्ड में पृथिवी, भूमि को सुस्पष्ट रूप से माता कहकर पुकारा गया है और इसी सूक्त में मनुष्य अपने को पृथिवी का पुत्र घोषित करता है—

''माता भूमिः, पुत्रोऽहं पृथिव्याः''

अर्थात् पृथिवी हम मानवों की माता है और हम पृथिवी माता के पुत्र हैं।

संसार के साहित्य में मानव की यह सर्वप्रथम लिखित मातृभूमि के प्रति भावनात्मक आत्मीयता की अभिव्यक्ति है। मातृभूमि के प्रति भावनात्मक हृदय का स्नेहिल सम्बन्ध विश्व प्रसिद्ध है। भारतवर्ष में तो स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्षकाल में मातृभूमि के हजारों, लाखों सपूतों ने **''वन्दे मातरम्''** का उद्घोष करते हुए अनेकों यातनाएँ सहीं, अनेकों ने **'वन्दे मातरम्'** का नारा लगाते हुए फांसी के फंदों को अपने हाथ से अपने गले में डाल लिया और मातृभूमि की बलिवेदी पर अपने प्राण न्यौछावर कर दिये। मातृभूमि के लिए इस बलिदानी भावना का भी पृथिवी सूक्त में वर्णन आता है।

वैदिक साहित्य में मातृभूमि, स्वदेश, स्वराष्ट्र आदि शब्दों का प्रयोग एक ही अर्थ में होता है। अंग्रेजी के राजनीति विज्ञान की तरह राज्य और राष्ट्र वेद में दो वस्तु नही हैं। वैदिक साहित्य में राज्य और राष्ट्र (State and Nation) एक ही हैं। मातृभूमि ही राष्ट्र है और राष्ट्र ही राज्य है। वहां राष्ट्रीय परतंत्रता का दर्शन नहीं होता। अपने

ही देश का राज्य हो , अपना स्वराज्य हो, और वहीं अपना स्वराष्ट्र भी हो । किसी देश को परतन्त्र बनाना, कहीं उपनिवेश बनाना वैदिक राज्य व्यवस्था में स्वीकृत नहीं है ।

संसार के स्वदेश भक्ति, स्वराष्ट्र भक्ति एवं स्वराज्य भक्ति के इतिहास में भूमि माता के गुणगान के असंख्य स्वरूप उपलब्ध होते हैं। हम जिस भूमि में जन्म लेते हैं उसके भौगोलिक स्वरूप, उसकी मिट्टी, पानी, नदियां, पहाड़, बाग-बगीचे, वन-उपवन आदि सभी के साथ एक भांवनात्मक अपनेपन का भाव हृदय में स्वतः ही उंद्भूत हो जाता है । हम उस भूखण्ड से स्वभावतः प्यार करने लग जाते हैं । उस भूखण्ड के गुणों का गान करने में हमें हार्दिक आनन्द मिलता है। हम अपनी मातृभूमि को संसार के अन्य भूखण्डों से अधिक प्यार करने लगते हैं । जैसे सभी को अपनी माता अच्छी लगती है, उसी प्रकार मनुष्य मात्र को अपनी मातृभूमि से संसार के अन्य देशों की तुलना में अधिक प्यार, अधिक आत्मीयता का अनुभव होता है । मातृभूमि की इन सभी विशेषताओं का, सभी आत्मीय भावनाओं का बीज रूप पृथिवी सूक्त में उपलब्ध होता है ।

हमने ऊपर लिखा है कि वैदिक साहित्य में देश, मातृभूमि, राज्य और राष्ट्र सभी शब्द एक ही अर्थ में प्रयोग किये जाते हैं, इसलिए कहीं कहीं विद्वानों ने पृथिवी सूक्त की चर्चा करते हुए इसे 'भूमि सूक्त' या 'राष्ट्र सूक्त' भी कहा है । इस सूक्त में भूमि माता के गुणों का वर्णन करते हुए सैकड़ों प्रकार की भावनाओं का वर्णन हुआ है । हम उन भावनाओं, विचारों और प्रशस्तियों पर प्रकाश डालने का विनम्र प्रयास कर रहे हैं ।

इस सूक्त में ६३ मंत्र हैं । सम्पूर्ण सूक्त का एक ही ऋषि **''अथर्वा''** है और सम्पूर्ण सूक्त का एक ही देवता **'भूमि'** है । निरुक्त की परम्परा के अनुसार मंत्र का ऋषि उस मंत्र का द्रष्टा है—

'ऋषयः मंत्र दृष्टारः' । मंत्र का देवता उस मंत्र में वर्णित या व्याख्यात विषय वस्तु (Subject Matter) होता है **'या तेनोच्यते सा देवता'** अर्थात् मन्त्र का कथ्य देवता है । इस सम्पूर्ण सूक्त का देवता भूमि है । इसका अर्थ यह हुआ कि इस सूक्त में भूमि का, मातृभूमि का वर्णन है

यह पृथिवी सूक्त मानव समाज का, सम्पूर्ण विश्व के मानव इतिहास का प्रथम **'राष्ट्रगान'** है । इस दृष्टि से भी इस सूक्त का विमर्श महत्त्वपूर्ण हैं ।

*

मंत्र– १

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।

सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरु लोकं पृथिवी नः कृणोतु ।।

पदार्थ :

सत्यम्=सत्य, मनसा, वाचा, कर्मणा सत्य का आश्रय । बृहत्= महान्, विशाल, उच्च । बृहत् का अर्थ उद्यम, उद्योग भी हो सकता है (बृहू उद्यमने धातु) । ऋतम्=शाश्वत सत्य, शाश्वत नियम, नित्य, सदा चरितार्थ होने वाले (Eternal Lawsor rules) नियम । उग्रम्=तेज, क्षात्र शक्ति । दीक्षा=सुनिश्चित सदुद्देश्य के लिए समर्पण । तपः= शारीरिक् , मानसिक, बौद्धिक, कठोरता का अभ्यास । ब्रह्म=लघु से महान् की ओर अग्रसर होना, अज्ञान अविद्या को मिटाने का उपाय। यज्ञः=यज्ञ, निःस्वार्थ, समन्वय, सामंजस्य, मिलजुल कर निःस्वार्थ भाव से देश सेवा में समर्पण । पृथिवी=पृथिवी, भूमि, राज्य, राष्ट्र । धारयन्ति=धारणा करते हैं । स्वदेश प्रेम, राष्ट्रीयता की भावना, राष्ट्र स्वतंत्रता को सुरक्षित रखते हैं । सा पृथिवी=वह मातृभूमि, ऐसा राष्ट्र । भूतस्य=भूतकाल की, इतिहास की । भव्यस्य=भविष्यत् काल की । पत्नी=रक्षा करने वाली । उरु=महान् (Excellent) । लोकं=संसार, प्रकाश आलोक । नः=हमारे लिए । कृणोतु=करें ।

विमर्श–इस मंत्र में दो तथ्यों का निरूपण हुआ है—(१) वे गुण या वे विशेषताएँ जो किसी देश, राष्ट्र को धारण करती हैं । यहाँ सात-आठ राष्ट्रीय तत्वों का परिगणन किया हुआ है जो राष्ट्र को धारण करते हैं । (२) दूसरा तथ्य यह है कि जो राष्ट्र को धारण करने वाले तत्त्वों से सम्पन्न होता है उसके अतीत के इतिहास या स्वर्णिम

मूल तथा उज्ज्वल भविष्य की सम्भावना को मातृभूमि महान् रूप में प्रकट करती है ।

धारण करने वाले तत्त्वों में सत्य को प्रथम स्थान पर गिनाया है । सत्य का क्षेत्र वाणी और व्यवहार दोनों में लागू होता है । बच्चों को और उच्च वर्ग के विद्यार्थियों को, सम्पूर्ण समाज को, सत्य के प्रति, ईमानदारी के प्रति, निष्ठावान बनाना राष्ट्र की उन्नति के लिए आवश्यक है । संसार हमारे राष्ट्र पर यह भरोसा करे कि ये लोग ईमानदार हैं। ये जो कहते हैं उसे पूरा करते हैं । व्यावहारिक जगत् में राष्ट्र की नीतियों और उत्पादों पर सत्यता की छाप हो, संसार के अन्य राष्ट्र और लोग यह भरोसा करें कि इस देश की बातों में कोई धोखा नहीं होगा । यहां खाने के दांत और दिखाने के दांत अलग-अलग नहीं हैं। संसार के दूसरे देशों को यह भरोसा हो कि इस राष्ट्र के व्यवहार और उत्पादन में पूरी-पूरी ईमानदारी है । राष्ट्र के उत्पादन शुद्ध और मिलावट रहित हों । राष्ट्र की गुणवत्ता पर अन्य राष्ट्र और संसार के लोग पूर्ण रूप से भरोसा कर सकें ।

राष्ट्र को धारण करने वाला दूसरा तत्व बृहत् है । राष्ट्र की परम्पराएँ और संकल्प महान् हों । साथ ही राष्ट्र उद्यम वाला (Indutries) और मनुष्य उद्यमी, परिश्रमी हों । जिस राष्ट्र में उद्योग, उद्यम, व्यवसाय और उच्च संकल्प होगा वह सदा उन्नतिशील, स्वतंत्र, अपने पैरों पर खड़ा रहेगा । ऐसे राष्ट्र को विदेशों से व्यवसाय तो करना होगा किन्तु दूसरे राष्ट्रों से ऋण, उधार नहीं लेना पड़ेगा ।

राष्ट्र को धारण करने वाला तीसरा तत्त्व ऋत है । ऋत (Eternal laws) अर्थात् प्रकृति के शाश्वत नियम हैं । ऐसे नियम नित्य हैं और सब जगह लागू होते हैं । उदाहरण के लिए परिश्रम का फल मीठा होता है । प्रकृति और राष्ट्र के कार्यों में सामन्जस्य होना चाहिये । जल, थल, वन, कृषि, भूमि का दोहन, खनिज का उत्पादन, पर्यावरण

की शुद्धता सभी में पूर्ण सामञ्जस्य और समन्वय होना चाहिये । भूमि से खनिज पदार्थों का अति दोहन होगा तो भूमि निर्वीर्य, अनुपजाऊ हो जायगी । भूमि के भीतर जल, तेल, कोयला सभी का भूमि की उर्वरता से सम्बन्ध है । वन-उपवन, जंगल-पहाड़ सब का सामंजस्य नहीं होगा तो राष्ट्र सुखी सम्पन्न नहीं रह सकेगा ।

क्रम प्राप्त अगला तत्व उग्रम्-तेज, तेजस्विता है । राष्ट्र के नागरिक तेजस्वी हों, विद्या-बुद्धि में तेज हों । विद्यार्थी और बुद्धिजीवी तेजस्वी हों, संसार राष्ट्र की बुद्धिमत्ता का लोहा माने ।

तेजस्विता में क्षात्र शक्ति भी सम्मिलित है राष्ट्र की क्षात्रशक्ति (Millitary power) का लोहा संसार स्वीकार करे । हिजड़े, निर्वीय, डरपोक, नपुँसक राष्ट्र की कोई महिमा नहीं होती । जिस राष्ट्र के युवक-युवती तेजस्वी नहीं होते उस राष्ट्र की स्वतंत्रता की रक्षा नहीं हो पाती । दूसरे राष्ट्र ऐसे निर्बल राष्ट्रों पर अधिकार करके इसकी प्राकृतिक सम्पदा का दोहन कर लेते हैं और तेजस्विताहीन राष्ट्र दरिद्र होकर अपमान का विष पीते रहते हैं ।

अगला तत्व दीक्षा को गिनाया है । दीक्षा का अर्थ है व्रत ग्रहण और क्रियात्मक अभ्यास । अंग्रेजी की थियरी (Theory) ज्ञान है और दीक्षा प्रैक्टिकल या प्रैक्टिस (Practical and Practice)। जब तप का अर्थ व्रत है तो राष्ट्र के सभी अंग राष्ट्र के सुनिश्चित उद्देश्य को पूर्ण रूप से पूरा करने के लिए कटिबद्ध हो जायें । विद्यालय, विश्वविद्यालय, संधान केन्द्र, विज्ञान के अनुसंधान केन्द्र सभी राष्ट्रीय उद्देश्य की पूर्ति में प्राण पण से जुट जायें । सभी राष्ट्रीय उद्देश्य (National objective target) को पूर्ण करें । शासन, सुरक्षा, सुव्यवस्था, न्याय, सभी का राष्ट्रीय उद्देश्य पूर्ण हो । उत्पादक अंग, कृषि, उद्योग, खदान (Mining), विद्युत आदि क्षेत्र अपने लक्ष्य को पूर्ण करें । कुल का अर्थ यह हुआ कि सारा सम्पूर्ण राष्ट्र अपने राष्ट्रिय लक्ष्य को पूर्ण करने में तत्पर हो जाये ।

तप, विलासिता, आरामतलबी का उल्टा है । जो विलास या आराम चाहेगा वह न तप करेगा और न अपने लक्ष्य या उद्देश्य को पूर्ण कर सकेगा । इसीलिए मंत्र में तप की गणना की गई है ।

अगला तत्त्व ब्रह्म है । ब्रह्म का अर्थ ज्ञान होता है । जो राष्ट्र अज्ञानी, विद्याविहीन होगा, वह कभी प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त कर सकेगा । ज्ञान में भौतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक सभी प्रकार की विद्याओं को सम्मिलित समझना चाहिए ।

राष्ट्र के धारण करने वाले तत्वों में अन्तिम तत्व यज्ञ है । अन्तिम का अर्थ कम महत्वपूर्ण नहीं है । बल्कि यज्ञ की महिमा राष्ट्र के सभी क्रिया-कलापों को अपने में समेट लेती है । यज्ञ का अर्थ है—(१) देवपूजन अर्थात् पूज्यों, विद्वानों, वृद्धों आदि का भली प्रकार सम्मान ।

(२) संगतिकरण—राष्ट्र के सभी अंगों में—शासन, सुव्यवस्था, सुरक्षा, न्याय, कृषि, उद्योग, आदि सभी में समन्वय सामंजस्य बना रहे ।

(३) दान—यज्ञ का महत्त्वपूर्ण अंग दान है । राष्ट्र का कोई भी अंग किसी दूसरें अंग के मूल्य पर उन्नति न करें, बल्कि एक-दूसरे से समन्वय, सहयोग और दान की भावना से परस्पर व्यवहार करें । कृषि के मूल्य पर उद्योग की उन्नति अच्छी नहीं है । इसी प्रकार देश का कोई भी अंग चाहे कृषि हो या उद्योग, शासन हो या न्याय, आन्तरिक सुरक्षा या बाह्य सुरक्षा, सीमाओं की रक्षा, सभी में आपस में समन्वय और सामंजस्य स्थापित रहे ।

ये आठ तत्व पृथिवी को, (पृथु विस्तारे) राष्ट्र के विस्तार को, उन्नति और विकास को धारण करते हैं । यह परिगणन मंत्र के प्रथम खण्ड में किया गया है ।

मंत्र के द्वितीय खण्ड में यह कहा गया है कि इस प्रकार इन तत्वों से धारित, धारण की हुई पृथ्वी हमारे भूत और भविष्य की रक्षा करती

है। राष्ट्र का भूत, अतीत उस राष्ट्र का इतिहास है। इतिहास की रक्षा राष्ट्रीय गौरव के लिए आवश्यक है और यही तत्व राष्ट्र के भविष्य को भी चमका देते हैं। विदेशी, प्रतिद्वन्द्वी राष्ट्र के इतिहास को बिगाड़कर हमारे स्वाभिमान को नष्ट कर देते हैं। राष्ट्रीय स्वाभिमान राष्ट्र की उन्नति के लिए आवश्यक होता है। राष्ट्र का भविष्य राष्ट्र की उन्नति की आशा को बलवान बना देता है।

मंत्र में अन्तिम तथ्य यह है कि ऐसा राष्ट्र हमारे यश को महान्, विस्तृत औरं आलोकमय, प्रकाशमय बना देता है।

*

मंत्र– २

''असंबाधं बध्यतो मानवानां यस्या उद्वत: प्रवत: समं बहु ।
नानावोर्या: ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी न: प्रथतां राध्यतां न: ।।''

पदार्थ :

असंबाधं=(सम्बाध=टकराव, बाधक) टकराव या संघर्ष न करने वाले । बध्यतः=परस्पर । मानवानाम्=मनुष्यों का । यस्या=जिसकी, पृथिवी की । उद्वतः=उच्चता (Elevation) । प्रवतः= निम्नता Declivity) । समम्=समान । बहुः=अनेक । नानावीर्याः=अनेक प्रकार के गुणों से युक्त । ओषधीः=औषधियों को । या=जो । बिभर्ति=भरण पोषण करती है । पृथिवी=विस्तीर्ण भूमि । नः=हमारा । प्रथताम्=विस्तार करे। राध्यताम्=सिद्ध करे, सम्पन्न करे ।

विमर्श–यह मंत्र मातृभूमि, पृथिवी माता की विशालता और महिमा का वर्णन करता है । मंत्र में मातृभूमि से प्रार्थना की जा रही है कि मातृभूमि हमारे संसाधानों का विस्तार करे और हमारे अनेक प्रकार के कार्यों, लक्ष्यों और उद्देश्यों को सिद्ध कर, मातृभूमि हमें शक्ति सम्पन्न और सफल बनावे ।

मनुष्य समाज में, राष्ट्र में बहुत प्रकार की उच्चता, निम्नता, विषमता विद्यमान है । सामाजिक रूप में मनुष्य की योग्यता, क्षमता और संसाधनों में विषमता और विलक्षणता है । मनुष्य समाज में व्यक्ति समाज और राष्ट्र में प्रगति में संवाधक तत्व हैं । वर्ग संघर्ष के रूप में और कभी विभिन्न दलों के स्वार्थों में संबाध, टकराव की स्थिति बनती है । ऊँचे-नीचे समान व्यक्तियों में परस्पर टकराव या

संघर्ष की स्थिति बन जाती है। किन्तु इस मंत्र में यह कहा गया है कि मातृभूमि में इतनी विशालता है कि परस्पर प्रगति में बाधक व्यवहारों को सामंजस्य में लाकर मनुष्यों में व्यक्तिगत, सामूहिक, सामाज़िक और राष्ट्रीय उपलब्धियों को सिद्ध करने में मातृभूमि हमें सक्षम और समर्थ बना देती है।

मनुष्य समाज में व्यक्तिगत, समाजिक, राष्ट्रीय, वर्गगत, अनेक प्रकार की टकराव की स्थितियाँ बनती भी हैं और बनायी भी जाती हैं। स्वार्थ बड़ा नैसर्गिक गुण है। व्यक्ति, समाज, वर्ग अपने स्वार्थो के कारण आपस में संबाध, टकराव की स्थिति पैदा कर लेते हैं। मनुष्य का स्वभाव है कि वह अपनी उन्नति, अपना विकास करना चाहते हैं। राष्ट्रकवि दिनकर जी ने ठीक ही कहा है—

''उद्भिज निभ चाहते सभी नर, बढ़ना मुक्त गगन में
अपना चरम विकास खोजना किसी प्रकार भुवन में।''

इस उत्थान और विकास की प्रक्रिया में टकराव, संघर्ष की स्थिति बन जाती है। कभी एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को अपना बाधक, अपने विकास में विरोधी समझने लगता है। कभी कृषि और उद्योग अथवा व्यवसाय एक-दूसरे को परस्पर बाधा डालने वाला समझने लगते हैं। कभी एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को अपनी उन्नति में बाधक समझने लगता है। किन्तु मंत्र की शिक्षा यह है कि पृथिवी माता की विशालता और विभिन्नता इतनी अधिक है कि अपनी उन्नति के लिए छोटे-बड़े, ऊंच-नीचे, सम्पन्न-विपन्न, किसी को किसी से टकराने की आवश्यकता नहीं है। पृथिवी माता के ऊपर और भीतर विविध प्रकार के, विविध शक्तियों वाले संसाधन उपस्थित हैं, जो सभी की उन्नति के लिए पर्याप्त हैं। यह विस्तृत भूमि माता अनेक प्रकार के गुणों वाली, अनेक प्रकार की शक्तियों वाली, हमारे विभिन्न प्रकार के रोगों

को, व्यक्तिगत, सामाजिक , राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय रोगों को दूर करने में समर्थ है । मंत्र में प्रार्थना की गयी है कि पृथिवी माता की विशालता हमारी सभी आवश्यकताओं को पूर्ण करे, हमारी शक्तियों का विस्तार करे (प्रथताम्) और हमारे सभी प्रकार के कार्यों को सम्पन्न करने में समर्थ रहे (राध्यताम्) ।

—o—

मंत्र– ३

''यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत्सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु ।।''

पदार्थ :

यस्याम्=जिस भूमि में । समुद्रः=समुद्र, सागर । उत्=और । सिन्धुः=प्रवाह वाली नदियां । आपः=झील तालाब आदि (हैं) । यस्याम्=जिस भूमि में । अन्नम्=अन्न, खाद्य पदार्थ । कृष्टयः=विभिन्न प्रकार की कृषि; परिश्रम करने वाले कृषक । संबभूवुः=अच्छी प्रकार उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न करते हैं । यस्याम्=जिस पृथिवी पर । इदम्=यह। प्राणत्=प्राण धारण करते हैं । एजत्=गति करते हैं । जिन्वति=अन्न, जल से सुख पूर्वक तृप्त होते है । सा=वह । भूमिः=भूमि । नः= हमारे लिए । पूर्वपेये=पान करने योग्य या (पा पाने) पालन करने वाले और पूरण करने वाले (पृ पालन पूरणयोः) दूध, रस, जल आदि पेय पदार्थों को । दधातु=धारण करे, हमें प्राप्त करावे । अर्थात् भूमि माता हमारे लिए पर्याप्त अन्न, जल, रस, दूध आदि प्राप्त कराकर हमें प्राण, जीवन और पोषण कराने वाली हो ।

विमर्श–यह मंत्र भूमि माता के अनेकानेक उपकारों का वर्णन कर रहा है। पृथिवी माता हमारे लिए समुद्र, प्रवाहमयी तीव्रगति वाली नदियां, झील, सरोवर आदि को धारण करती है । यदि समुद्र, नदियां, सरोवर आदि न हों तो भूमि ऊसर, बंजर हो जाती है । ऐसी भूमि में कृषि की सम्भावना नहीं हो पाती । ऊसर बंजर भूमि में न कृषि होती है, न अन्न, फल, मूल, कन्द आदि उत्पन्न होते हैं । ऐसी अनुपजाऊ, उर्वरकताहीन भूमि में जीवन धारण बहुत कठिन हो जाता है ।

कृष्टि, कृषि और कृषक दोनों अर्थों को बताता है । अन्न, दूध, फल, अन्य पेय पदार्थों के लिए कृषि और परिश्रम करने वाले कृषकों द्वारा अन्न आदि खाद्य उत्पन्न होते हैं । धरती माता की कृपा से अत्यन्त परिश्रमजीवी कृषकों के परिश्रम से अन्न आदि खाद्य पदार्थ सम्भव होते हैं, अर्थात् कृषक बन्धु धरती माता के ऊपर कृषि करके अन्न, फल आदि खाद्य पदार्थों को उत्पन्न करते हैं ।

यह प्राणिजगत् धरती माता की गोद में प्राण ग्रहण करता है, जीवन धारण करता है । यह जीव जीवधारी प्राणी इसी धरती माता की गोद में अनेक प्रकार से गतिशील होकर अपने जीवन का निर्वाह करता है। इसी धरती के ऊपर प्राणिजगत् (जिन्वति) अन्न, जल, फल, फूल से तृप्त होकर सुख का अनुभव करता है ।

इस मंत्र में अभी तक धरती माता की विशेषताओं का वर्णन हो रहा था । धरती माता समुद्र, नदी, झील आदि से जल के सुगम साधनों से सम्पन्न होकर कृषि को सम्भव बना देती है और मनुष्य समाज इसी पर जीवन धारण करके प्रगतिशील होकर सुख का अनुभव करता है, व्यक्ति स्वयं सुखी रहता है और अपने समाज और प्राणिजगत् को सुख का अनुभव कराता है । इन विशेषताओं का वर्णन करके मंत्र भूमि माता से अनुरोध करता है, प्रार्थना करता है कि भूमि माता हमारे लिए पहले से ही पेय पदार्थों को धारण करे । पेय शब्द में 'पा-पाने' पीने योग्य और 'पृ-पालन पूरणयोः' पालन योग्य और पूरण योग्य पदार्थों को धारण करे । यहां पेय-शब्द की 'अर्थवत्ता महत्वपूर्ण है। सामान्य रूप में पेय पीने योग्य पदार्थों के लिए प्रयोग में आता है किन्तु यहां पेय शब्द को पीने के अर्थ में तथा पालन करने के अर्थ में ग्रहण किया गया है । यहां मातृभूमि से यह प्रार्थना की जा रही है कि हे भूमि माता आप हमें जैसे अन्न, जल, फल, कृषि आदि से सम्पन्न करके हमें सुख पहुँचाती हैं उसी प्रकार भूमि माता आप हमारा पालन-पोषण करके हमको अपनी गोद में धारण करें ।

—०—

मंत्र–४

"यस्याश्चतस्त्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः। या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत्सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु ।।"

पदार्थ :

यस्याः=जिसकी (पृथिवी का सर्वनाम) । चतस्त्रः=चारों । प्रदिशः=प्रकृष्ट, विस्तृत, प्रकर्षवाली दिशाएँ । पृथिव्याः=पृथिवी की । यस्याम्=जिस पृथिवी में । अन्नम्=खाने योग्य अन्न, फल आदि । कृष्टयः=कृषि, कृषक । संबभूवुः=सम्भव होते हैं, उत्पन्न होते हैं । या=जो पृथिवी । बिभर्ति=भरण पोषण करती है । बहुधा=बहुत प्रकार से । प्राणत्=प्राण धारण,जीवन धारण करने वाले । एजत्=गति शील, कार्यशील । सा=वह । भूमिः=पृथिवी । नः=हमारे लिए, पालन पोषण के लिए । गोषु=गायों में । अपि=भी । अन्ने=अन्न में । दधातु=धारण करे ।

विमर्श—मंत्र के प्रथम भाग में भूमि-माता के विस्तार की चर्चा है। हमारी भूमि माता की चारों दिशाएँ प्रकृष्ट हैं । हमारी भूमि माता, हमारी मातृभूमि में चारों दिशाएँ—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण सभी पर्याप्त विस्तृत और प्रकर्ष वाली हैं । सभी ओर प्राकृतिक सम्पदाएँ कृषि और नैसर्गिक सुन्दरता विद्यमान है । सभी विस्तृत दिशाओं में परिश्रमशील कृषक लोग अन्न, फल, फूल, दूध आदि उत्पन्न करके प्रसन्न हैं । मंत्र कहता है कि कोई एक या दो दिशाएँ ही अन्न आदि पालन पोषण करने वाले पदार्थों से सम्पन्न नहीं हैं । हमारी भूमि माता की चारों दिशाएँ, सम्पूर्ण पृथिवी माता की चारों दिशाओं में अर्थात् पूरे देश में कृषि, उद्यान, अन्न, फल, मूल का उत्पादन सम्भव होता

है । मातृभूमि की चारों दिशाएँ प्रकृष्ट हैं, उर्वर हैं । सभी दिशाओं में अन्न, फल, कन्द, मूल, दूध आदि का उत्पादन सम्भव होता है ।

मंत्र में मातृभूमि में जीवन धारण करने वाले और गतिशील परिश्रम करने वाले मनुष्यों को भूमि माता बहुत प्रकार से (बहुधा) भरण-पोषण प्रदान करती है ।

भरण पोषण करने का एक मात्र प्रकार कृषि ही नहीं है । मनुष्य के भरण पोषण के लिए अन्न, जल, वस्त्र और आवास की आवश्यकता होती है । जल तो पृथिवी पर प्रकृति के रूप में ही सुलभ रहता है । अन्न, फल, मूल आदि कभी-कभी प्रकृति में स्वतः सुलभ रहते हैं । ऐसी धरती अकृष्टपच्या अर्थात् बिना खेती किये अन्न, फल, मूल देने वाली कहलाती है । जब प्रकृति में सुलभ अन्न, फल, आदि से मानव समाज का भरण-पोषण सम्भव नहीं हो पाता, तब मनुष्य कृषि करता है । यह कृषि की भूमि कृष्टपच्या कहलाती है । अनेक प्रकार से फल-फूल आदि खाद्य पदार्थों को प्राप्त किया जाता है और भूमि माता अपने पुत्रों का पालन-पोषण करती है ।

'''बहुधा बिभर्ति' में भाव है कि भूमि माता बहुत प्रकार से प्राणियों का पालन-पोषण करती है । भोजन की प्राप्ति के पश्चात् वस्त्र, और वस्त्र की प्राप्ति के पश्चात् आवास की आवश्यकता पड़ती है । यहीं से मानव समाज की विभिन्न प्रकार की गतिविधियों का आरम्भ हो जाता है । वस्त्र के लिए उद्योग चाहिये, फिर सब मनुष्यों को वस्त्र मिले इसके लिए विनिमय और व्यवसाय की आवश्यकता होती है । इसी क्रम में अनेक प्रकार के कार्यों की व्यवस्था के लिए शान्ति, सुव्यवस्था, परिवहन सबकी आवश्यकता होने लगती है । भूमि माता की विशालता, विस्तार और प्रकृष्टता सब कुछ सम्भव बना देती है ।

मंत्र के अन्तिम खण्ड में भूमि माता से प्रर्थना कर रहे हैं कि वह हमें गाय और अन्न सुलभ बनावे । गाय से हमें एक ओर दूध, घी,

आदि पोषण करने वाले पदार्थ प्राप्त होंगे, वहीं दूसरी ओर कृषि के लिए अत्यन्त आवश्यक उपकरण बैल आदि भी हम गो माता से प्राप्त करते हैं। मंत्र में भूमि माता से अनुरोध करते हैं कि भूमि माता हमें खाद्य पदार्थों, अन्न, फल आदि से और पेय पदार्थों के लिए गऊ आदि से सदा सम्पन्न रखे जिससे हमें अन्न और पेय सब सदा सुलभ रहें।

*

मंत्र–५

''यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन् ।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु ।।''

पदार्थ :

यस्याम्=जिस पर, जिस मातृभूमि पर । पूर्वे=पूर्व काल में, पहले । (पृ० पालनपूरणयोः से पालन पोषण करने वाले) । पूर्वजनाः=पूर्वज लोग, श्रेष्ठ, उत्तमवृत्ति, आचरण, विचार के पुरुष । विचक्रिरे=विशिष्ट, उत्तम कार्यों को करते रहे । यस्याम्=जिस मातृ भूमि पर । देवाः= (विद्वांसोहि देवाः), विद्वान् लोग, श्रेष्ठ, आचरण विचार के लोग । असुरान्=असुरों को, राक्षसों को (असून् प्राणान्राति आददाति गृह्णाति) शरीर का पोषण करने वाले भौतिकवादी, आध्यात्म की उपेक्षा करने वालों को । अभ्यवर्तयन्=असुरों को, स्वार्थियों को, परमार्थ विरोधियों को पराजित, आक्रान्त करते रहे हैं । गवाम्=गायों का, अश्वानां=घोड़ों का, वयसः=पक्षियों का । च=और । विष्ठाम्=(वि=स्था) विभिन्न प्रकार से रहने का स्थान । भगम्=ऐश्वर्य । वचः=ओज-तेज । दधातु= धारण कराये ।

विमर्श–मंत्र के प्रथम खण्ड में मातृभूमि के पूर्वकाल के इतिहास के प्रति स्वाभिमान के भाव का वर्णन है । किसी भी जाति के, किसी भी राष्ट्र के भावी उत्त्थान के लिए भूतकाल के इतिहास का स्वाभिमान बड़ा सहायक होता है । पूर्वजों की यश गाथा से वर्तमान पीढ़ी में उत्साह, वीरता और स्वाभिमान का उदय होता है । मंत्र में कहा गया है कि हमारे पूर्ववर्ती पूर्वजों की उपलब्धियाँ महान् थीं । उन्होंने सदा सच्चरित्रता सद्वृत्ति और देवचरित्र को अपने आचरण में, अपने

जीवन में धारण किया । हमारे पूर्वजों ने सदा असुरवृत्ति के लोगों को, स्वार्थी, राक्षसवृत्ति के लोगों को पराजित करके रखा, कभी असुरों को प्रबल नहीं होने दिया ।

मंत्र में पूर्व जनों के साथ में पूर्व विशेषण लगा हुआ है । पूर्व जब कालवाची है तो भूतकाल के इतिहास को बताता है और जब पृ धातु से पूर्व बनाते हैं तो इसका अर्थ पूरण करना, पालन करना होता है । इस अर्थ में भाव यह होगा कि हमारे देश के पूर्वज अपने देश के लोगों का पालन-पोषण करने में समर्थ थे और विंशेष प्रकार के विशिष्ट कार्यों में समर्थ थे । (विचक्रिरे=वि० विशेष प्रकार के विशिष्ट= चक्रिरे, करते रहे) । ये विशिष्ट प्रकार के कार्य विद्या, व्यवसाय, उद्योग, सुरक्षा क्षेत्रों में होते हैं । यह पूर्व काल की विशिष्ट उपलब्धियों की ओर संकेत चल रहा है ।

मंत्र में देव शक्तियों द्वारा असुर शक्तियों के पराजित होने का वर्णन है । देव शक्तियां सद्वृत्ति, सच्चरित्र और सद्विचार वाली होती हैं । असुर शक्तियां स्वार्थी, दूसरों के परिश्रम पर जीने वाली होती हैं । देवचरित्र भौतिक उन्नति के साथ आध्यामिकता को अधिक महत्त्व देता है । असुरचरित्र आध्यात्मिकता का तिरस्कार करके केवल भौतिकता को प्रश्रय देता है । इसी भाव को लेकर मंत्र में कहा गया है कि हमारी मातृभूमि के पूर्वज सदां ही असुर शक्तियों को दबा कर रखते थे । कभी भी उनको बढ़ने नहीं देते थे ।

मंत्र के अगले खण्ड में मातृभूमि की सुन्दरता का वर्णन इस रूप में है कि हमारी मातृभूमि पशु, पक्षियों को सदा से ही निवास देने में समर्थ रही है । गाय, दूध और पोषण का प्रतीक है । घोड़े गतिशीलता और वीरता के प्रतीक हैं । पक्षी कलरव, सुन्दर ध्वनि के लिए प्रसिद्ध हैं । पशु-पक्षी अच्छी सुरम्य जलवायु में रहते हैं । गाय, घोड़े और पक्षियों का विशेष रूप से निवास देश की सुन्दरता, जलवायु की

अनुकूलता प्रकट करता है ।

मंत्र के अन्तिम खण्ड में मातृभूमि से यह अनुरोध किया गया है कि मातृभूमि हमारे लिए ऐश्वर्य और तेजस्विता धारण करावे । कई देश अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण निर्धन, ऐश्वर्यविहीन होते हैं । ऐश्वर्य भी अनेक प्रकार का होता है—

''ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञानवैराग्य योश्चैव षण्णां भग इतीरिणा ।।''

इस श्लोक में भगं अर्थात् ऐश्वर्य को ६ प्रकार का गिना हैं— (१) समग्र ऐश्वर्य (२) धर्म (३) यश (४) श्री (५) ज्ञान (६) वैराग्य ।

मातृभूमि से तेज धारण कराने का अनुरोध है । तेज शरीर में होता है, वीरता में होता है, विद्या और वाणी में होता है, जीवन और चरित्र में होता है । भाव यह है कि हमारी पृथिवी माता अपनी सन्तानों को सब प्रकार से तेजस्वी करे ।

*

मंत्र–६

''विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी ।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्र ऋषभा द्रविणे नो दधातु ।।''

पदार्थ :–

विश्वंभरा=सबका भरण पोषण करने वाली । वसुधानी=सबके निवास के लिए आवश्यक सुविधा देनेवाली (वासयति इति वसुः), धन को धारण करने वाली । प्रतिष्ठा=सभी चर अचर पदार्थों को अपने में आश्रय देने वाली । हिरण्यवक्षा=सोना, चांदी, ताँबा आदि खनिज पदार्थों को अपने में धारण करने वाली । जगतः=सब संसार को । निवेशनी=स्थान देने वाली, बसाने वाली । वैश्वानरं=सभी प्राणियों को । बिभ्रती=भरण पोषण करने वाली । भूमिः=मातृभूमि, पृथिवी माता । अग्निम्=अग्नि को । इन्द्रऋषभा=श्रेष्ठ सम्पन्न सम्राट् को आश्रय देनेवाली । द्रविणे=धनों में । नः=हमारे लिए । दधातु=धारण करे ।

विमर्श–मंत्र के प्रथम खण्ड में मातृभूमि की कई विशेषताओं का बहुत प्यारा हृदयग्राही कृतज्ञता से भरपूर वर्णन है । हमारी मातृभूमि विश्वम्भरा है । सभी का भरण पोषण करनेवाली है । मातृभूमि के लिए न कोई छोटा होता है न कोई बड़ा होता है । जैसे—घास-फूस, वनस्पतियां स्वतंत्रता पूर्वक उगकर अपनी शक्ति सुविधा साधन के अनुसार संसार में बढ़ते हैं, उन्नति करते हैं और अपना चरम विकास प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार सभी मनुष्य अपने साधन सुविधा के अनुसार अपनी उन्नति करते हैं । मातृभूमि किसी का पक्षपात नहीं करती । मातृभूमि के लिए सभी मनुष्य पशु-पक्षी, वनस्पतियाँ, सभी समान हैं । किसी के लिए मातृभूमि कोई पक्षपात नहीं करती ।

समाज में धनी-निर्धन, सबल-निर्बल, साधन-सम्पन्न, साधनविहीन आदि सारी विषमताएँ सामाजिक अन्याय या आर्थिक अन्याय के कारण होती हैं । मातृभूमि तो परिपूर्ण-विश्वंभरा है ।

राष्ट्रकवि श्री रामधारी सिंह दिनकर ने बिल्कुल ठीक लिखा है—

''उद्भिज निभ चाहते सभी नर, बढ़ना मुक्त गगन में ।
अपना चरम विकास खोजना, किसी प्रकार भुवन में ।।''

मातृभूमि वसुधानी है । वसु का सामान्य अर्थ धन-धान्य है किन्तु वैदिक भाषा में बसांने वाले को भी वसु कहते हैं । सो वसुधानी सें मातृभूमि का दो अर्थ बना, एक तो, मातृभूमि मनुष्य, पशु, पक्षी सभी को सामान्य रूप से निवास करने के लिए स्थान देती है । निवास करनें के लिए धन-सम्पत्ति आदि आवश्यक वस्तुएं अपेक्षित हैं । धन-सम्पत्ति का अर्थ रूपए पैसे के अतिरिक्त प्राकृतिक सम्पदा भी है । अतः वसुधानी का यह अभिप्राय है कि मातृभूमि हमें जल-स्थल, वन-पर्वत और खनिज पदार्थ जो भी आवश्यक हैं, उन सबको हमारे लिए धारण करती है ।

मातृभूमि सबके लिए प्रतिष्ठा है, सबका आधार है । किसी देश में मनुष्यों की जनसंख्या बढ़ जाती है । कहीं कहीं घरेलू और जंगली पशुओं की जनसंख्या बढ़ जाती है । कहीं पक्षियों और टिड्डियों की संख्या बढ़ जाती है, तो लोग चिंतित हो जाते हैं । किन्तु मातृभूमि इतनी उदार है, इतनी सहनशील है कि उसे मनुष्यों और पशु-पक्षियों की संख्या से कोई चिन्ता नहीं होती क्योंकि मातृभूमि सबको ही स्थान देती है ।

मातृभूमि हिरण्यवक्षा है । इसके वक्ष, हृदय में हिरण्य है । हिरण्य खनिज पदार्थों का प्रतीक है । यों तो हिरण्य का अर्थ सोना या चमकीले पदार्थ है । सभी खनिज पदार्थों का धरती की गुणवत्ता में महत्वपूर्ण योगदान है । धरती के वक्ष में पानी की धाराएँ बहती हैं,

पृथ्वी में कहीं सोना है तो कहीं लोहा, कहीं तांबा है तो कहीं जस्ता, कहीं-कहीं तेल और गैस भी धरती के हृदय में सुरक्षित है। मनुष्य इन सभी खनिज पदार्थों से उपयोग लेता है, किन्तु मानव सभ्यता की आकाँक्षा यह है कि मनुष्य धरती माता के सीने में छिपे हुए उपयोगी और अमूल्य पदार्थों का अतिदोहन न करे। माता का दूध बच्चे पीते हैं, यही प्रकृति का धर्म है। मनुष्य भी धरती माता की सन्तान है। उसे भी धरती माता के उपयोगी पदार्थों का उचित मात्रा में सेवन करने का अधिकार है। किन्तु जैसे बच्चा माँ का रक्त नहीं चूसता किन्तु केवल उसका दूध पीता है, उसी प्रकार मनुष्य भी धरती में सुरक्षित पदाथों से लाभ तो उठावें किन्तु अति दोहन, विचारहीन दोहन, पृथिवी की गुणवत्ता को भुलाकर उसका दोहन न करे, नहीं तो धरती की गुणवत्ता, उर्वरकता, वनस्पतियों के गुण, फल, मूल, कन्द सबके गुण विकृत हो जाते हैं और कभी उष्णता बढ़ जाती है, कभी सुनामी जैसे प्रचण्ड बाढ़, तूफान, अति वर्षा, सूखा, अनेक प्रकार की महामारियां आ जाती हैं। अतः हिरण्यवक्षा यह चाहती है कि मनुष्य उसके कोष से लाभ उठावे किन्तु धरती की गुणवत्ता को नष्ट न करे।

इस मंत्र में पृथिवी के लिए जगतः निवेशनी विशेषण आया है। हमारी धरती माता धरती पर बसने वाले सब जगत को कल्याण में सुरक्षित रखने वाली है। संसार में जितने भी गतिमान प्राणी हैं सभी जगत में सम्मिलित होते हैं। जगत का वास्तविक अर्थ ही है गच्छति इति जगत्। इस प्रकार सारे गतिशील प्राणियों को कल्याण के वातावरण में रखने वाली हमारी धरती माता है।

इस मंत्र में धरती के लिए 'वैश्वानरं बिभ्रती' विशेषण आया है। वैश्वानर विश्व भर है। अर्थात् सभी नर-नारी, सभी शरीरधारी वैश्वानर में सम्मलित है। बिभ्रती का अर्थ भरण-पोषण करनेवाली है। वैश्वानर बिभ्रती का सीधा सा अर्थ हुआ कि धरती माता अन्न, फल,

फूल, कन्द, वनस्पति, दूध, जल, औषधि आदि से संसार के सभी प्राणियों का भरण-पोषण करती है ।

वैश्वानर जठराग्नि को भी कहते हैं । मंत्र में वैश्वानरं अग्नि बिभ्रती पाठ है अर्थात् धरती माता जब अपने प्राकृतिक उपादानों से—खनिज, वनस्पति, जलवायु से प्रदूषण मुक्त रहती है तो धरती पर बसने वाले प्राणियों की वैश्वानर अग्नि—भोजन को पचाने वाली जठराग्नि स्वस्थ, रहती है, क्रियाशील रहती है और वह मनुष्य के स्वास्थ्य में सबसे अधिक उपयोगी सहायक है । बहु संख्यकं रोग जठराग्नि के विकृत होने पर ही पैदा होते हैं ।

मंत्र में मातृभूमि के लिए एक विशेषण आया है इन्द्रऋषभा । इन्द्र है मातृभूमि का सम्राट् अर्थात् हमारे राष्ट्र का सम्राट् और ऋषभ हुआ बलवान्, वीरता, तेजस्विता युक्त । इस प्रकार इन्द्रऋषभा का अर्थ हुआ कि हमारे देश का सम्राट्, हमारे देश की क्षात्रशक्ति, सैनिकबल, वीरता, ओजस्विता, तेजस्विता आदि से सम्पन्न हों जिससे कोई विरोधी राष्ट्र हमें पराजित न कर सके ।

इन्द्र ऋषभा में एक और भाव है कि हमारी मातृभूमि इन्द्र ऋषभा हो । भूमि गऊ है और सूर्य उसका ऋषभ है । सूर्य की किरणें पृथिवी को शक्ति पहुंचाती हैं । सूर्य की किरण पृथिवी में उर्वरकता और प्राणशक्ति का संचालन करती है ।

मंत्र में बड़ा सुन्दर पाठ है "भूमिः अग्नि इन्द्र ऋषभा द्रविणे नो दधातु ।" इसका सीधा अर्थ यह हुआ कि सूर्य की किरणों से शक्ति प्राप्त करके हमारी पृथिवी माता हमारे लिए धन-धान्य धारण करे । जब सूर्य पृथिवी में अपनी किरणों के माध्यम से प्राण, उर्वरकता और गर्मी पहुंचाता है तो सूर्य इस पृथिवी में जलवृष्टि के द्वारा पृथिवी में अन्न, इत्यादि उपजाने की शक्ति देता है । धरती माता की उर्वरकता और जलवायु अन्न, फल, फूल, कन्द, मूल, वनस्पतियां और खनिज

आदि किसी राष्ट्र के वास्तविक धन हैं । जब हम कहते हैं कि हमारी पृथिवी माता, हमारी मातृभूमि हमें धन-धान्य से सम्पन्न करे तो हमारा अर्थ पृथिवी, जलवायु, खनिज और वनस्पतियों के स्वास्थ्यप्रद गुणों से होता है । इस प्रकार मातृभूमि हमें सब प्रकार के धन-धान्य धारण कराती है ।

*

मंत्र–७

''यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम्।
सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा ।।''

पदार्थ :

यां=जिसंको । पृथिवीम्=विस्तार वाली को (पृथु-विस्तारे) । भूमिं=भूमि की । रक्षन्ति=रक्षा करते हैं । अस्वप्नाः=आलस्य, निद्रा, प्रमाद आदि से रहित । विश्वदानीं=सदा-सर्वदा । विश्वदानीं=सब प्रकार से पदार्थों को देनेवाली । देवाः=देवलोग, वीर, कुशल, दक्ष लोग । अप्रमादम्=प्रमाद रहित होकर (क्रिया-विशेषण) । सा=वह (विस्तृत मातृभूमि) । नः=हमारे लिए । मधु=मधुर, प्रिय, स्वादिष्ट (अन्न, फल, आदि) । प्रियं=प्रिय । दुहाम्=देनेवाली । अथो=और । वर्चसा=शूरता, वीरता, ओज-तेज, ज्ञान-बल आदि के द्वारा । उक्षतु=सिंचन करे, परिपूर्ण करे ।

विमर्श–मंत्र में प्रथम बात यह कही गयी है कि मातृभूमि की रक्षा देवलोग, शूरवीर, कुशल, विद्वान् लोग सदा आलस्य प्रमाद से रहित होकर ही करते हैं । मंत्र में देवों का एक विशेषण है अस्वप्नाः । मातृभूमि के रक्षा करने वाले देव लोग दिव्यगुण विशिष्ट होते हैं । दिव्यगुण यहाँ रक्षा करने से सम्बन्धित है । मातृभूमि की रक्षा के लिए सैनिक, सेनापति, अस्त्र-शस्त्र, रण कौशल, युद्ध की कला, सब कुछ आवश्यक है । यह सुरक्षा का कौशल स्वप्न, ख्याली पुलाव, मनमोदक नहीं है, इसके लिए वास्तविक सतर्कता अपेक्षित है ।

मातृभूमि की रक्षा केवल अस्त्र-शस्त्र, सैनिक या युद्ध कौशल से ही नहीं होती है, इसके लिए प्रमाद रहित होकर देश का उत्पादन, खाद्यान्न, उद्योग-धन्धा, सबकी उन्नति आवश्यक होती है । यदि देश भिखारी बनकर सबके सामने हाथ फैलाता रहे तो उसे आर्थिक दासता झेलना

पड़ेगी । आज के इस वैज्ञानिक युग में स्वप्न देखने से, कल्पना की उड़ान भरने से राष्ट्र रक्षा नहीं होगी । एक ओर ज्ञान-विज्ञान, भगोल-खगोल सबके ज्ञान का सामर्थ्य हो । दूसरी ओर अस्त्र-शस्त्र आणुविक शक्ति आदि की सम्पन्नता हो और सेना, सेनापति में वीरता, शूरता, रण-कौशल हो । आज के सन्दर्भ में आत्म निर्भरता रक्षा के लिए परम आवश्यक है । आर्थिक आत्म-निर्भरता, कृषि उद्योग आदि की सम्पन्नता के साथ कला-कौशल, तकनीकी, ज्ञान विज्ञान और सैनिक आत्म निर्भरता सभी कुछ अपेक्षित है । मंत्र का यह कहना है कि देव लोग सदा सर्वदा वास्तविकता के धरातल पर प्रमाद रहित होकर अतिशय विस्तार वाली मातृभूमि की रक्षा करते हैं ।

मातृभूमि के लिए, एक शब्द विश्वदानीं आया है । विश्वदानीं एक तो सब समय का वाचक, सदा सर्वदा है (इदानीं, तदानीं की तरह) । विश्वदानीं का एक और अर्थ हुआ—विश्व+दानी—सब कुछ देनेवाली हमारी प्यारी मातृभूमि दानी है, देनेवाली है । केवल अन्न या केवल जल ही नहीं देती है बल्कि हमें बहुत कुछ देती है । उन्नति का अवकाश देती है । संसार में स्वाभिमान और महत्वाकांक्षा देती है । हम अपने जीवन में धन, सम्मान, ज्ञान, मान, प्रतिष्ठा, राष्ट्रीय स्वाभिमान जो कुछ भी पाते हैं वह सब हमें मातृभूमि से प्राप्त होता है । अतः हमारी मातृभूमि हमारे लिए विश्वदानी है, हमें सब कुछ देती है ।

इस मंत्र में मातृभूमि के लिए 'मधु ाप्रयम् दुहाम्' का प्रयोग किया गया है । इसका भाव यह हुआ कि मातृभूमि दुहने पर अर्थात् दोहन करने पर हमको मधुर प्रिय हितकारी पदार्थों को प्राप्त कराती है । मातृभूमि से कई वस्तुएं हमें यों ही बिना किसी प्रयास या परिश्रम के प्राप्त होती हैं । हर देश की अपनी जलवायु, धूप, सूर्य की उर्जा, चन्द्रमा की आह्लादकता, रसात्मकता, वर्षा, विभिन्न ऋतुओं की विशेष उपयोगिता सब कुछ हमें मातृभूमि से प्राप्त होती है । किन्तु, अनेक वस्तुएँ ऐसी भी हैं जिनके लिए हमें परिश्रम करना पड़ता है । मातृ-

भूमि का दोहन करना पड़ता है । मातृभूमि हमें अन्न देती है, फल, फूल, कन्द-मूल, जल आदि मधुर स्वादिष्ट पदार्थों को प्राप्त करने के लिए हमें मातृभूमि का दोहन करना पड़ता है । इसीलिए तो मातृभूमि मधु प्रियं दुहाम् है । मातृभूमि में खनिज पदार्थ भी हैं । हमारी मातृभूमि रत्नगर्भा है, हमारे सागर रत्नाकर हैं, किन्तु इन सब बहुमूल्य पदार्थों को प्राप्त करने के लिए हमें परिश्रम करना पड़ता है । इसीलिए मंत्र कह रहा है कि मातृभूमि हमें अनेक प्रकार के प्रिय मधुर पदार्थों को प्राप्त कराती है, किन्तु उसके लिए हमको बुद्धि पूर्वक, संयम के साथ, भले-बुरे का विचार करके भूमिमाता का दोहन करना पड़ता है। माता का दूध पीया जाता है, रक्त नहीं चूसा जाता। इसी प्रकार रत्नगर्भा वसुन्धरा का दोहन किया जाता है, शोषण या अति दोहन नहीं किया जाता । मातृभूमि के ये बहुमूल्य उपहार हमें बिना कुछ मूल्य दिये ही प्राप्त हो जाते हैं । अतः इनके अतिदोहन और दुरुपयोग से हमें बचने की आवश्यकता है ।

हम मातृभूमि के उपहारों का दोहन करते समय यह ध्यान में रखें कि हमें मातृभूमि का दूध पीना है, रक्त नहीं चूसना है ।

मंत्र के अन्तिम खण्ड में यह प्रार्थना की गयी है कि हमारी मातृभूमि हमको "वर्चसा उक्षतु," शूरता, वीरता. ओज, तेज, ज्ञान आदि तेजस्वी गुणों से हमें शक्ति सम्पन्न बना दे । वस्तुतः इन आदर्श गुणों को हमें अपने देश के नागरिकों में उत्पन्न करना होता है । हमारे देश की शिक्षा-दीक्षा, परम्परा, सामाजिक वातावरण, सामाजिक आदर्श ऐसे सुन्दर हों कि हमारे देश की जनता, शूरता, वीरता ओज-तेज सच्चरित्रता आदि से सदा सम्पन्न बनी रहे । सदाचार और मर्यादायें हमारे देश में सदा सम्मान पाती रहें । इस प्रकार हमारी मातृभूमि हमें वर्चस्विता प्रदान करेगी ।

मंत्र–८

**"यार्णवेऽधि सलिलिमग्र आसीद्यां मायाभिरन्वचरन्मनीषिणः ।
यस्या हृदयं परमे व्योमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः
सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधतूत्तमे ।।"**

पदार्थ :

या=जो (पृथिवी) । अर्णवे अधि=महान् शुद्ध समुद्र । सलिलम्=जल । अग्र=आगे, पहले । आसीत्=थी । सलिलम् अग्र आसीत्=पहले जलरूप थी अर्थात् पृथिवी जल में ही विलीन सी थी । याम्=जिस पृथिवी को । मायाभिः=कुशलताओं के साथ, ज्ञान बल के साथ । मनीषिणः=मननशील विद्वान्, ज्ञान विज्ञान से युक्त ज्ञानी लोग । अन्वचरन=(अनु+अवचरन)=अच्छी तरह अनुकूलता से सेवा करते आये हैं । यस्याः=जिसका । हृदयं=हृदय । परमेव्योमन्=महान् आकाश में अर्थात् महान् प्रभु की व्यवस्था में । सत्येन=सत्य के द्वारा । आवृतम्=आवृत आच्छादित । अमृतम्=अमृत । पृथिव्याः=पृथिवी का । सा=वह । नः=हमारे लिए । भूमिः=पृथिवी । त्विषिं=ज्ञान की दीप्ति । बलं=बल तेज को । राष्ट्रे=राष्ट्र में । दधातु=धारण करे । उत्तमे=उत्तम राष्ट्र में

विमर्श–मंत्र में प्रथम बात यह कही गयी है कि हमारी मातृभूमि, यह पृथिवी सर्वप्रथम जल में मिली हुई थी । जल के भीतर ही थी; अर्थात् पृथिवी की उत्पत्ति जल से ही हुई है । अघमर्षण मंत्रों में आता है–'समुद्रादर्णवादधि.......दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्ष मथोस्वः ।'

—ऋग० १०/१९०/३

तैत्तिरीय उपनिषद में आता है–

"तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः । आकाशाद्वायुः ।

वायोरग्निः । अग्नेरापः । अद्भ्यः पृथिवी ।''

—ब्राह्मानन्दवल्ली प्रथम अनुवाक ।

संसार की उत्पत्ति के समय परमेश्वर ने जब परमाणुओं को व्यवस्थित किया तो आकाश उत्पन्न हुआ । आकाश के पश्चात् वायु की उत्पत्ति हुई और वायु के पश्चात् अग्नि, अग्नि के पश्चात् जल उत्पन्न हुआ । उसी जल से पृथिवी की उत्पत्ति हुई । इसीलिए प्रस्तुत मंत्र में कहा गया है कि पृथिवी पूर्व समय में जल के भीतर समायी हुयी थी और यह पृथिव़ी महान् आकाश में प्रभु के सत्य संकल्प के बल से टिकी हुई है अर्थात पृथिवी के बाहर भीतर सर्वत्र महान् प्रभु व्यापक हैं । इस पृथिवी की सेवा विद्वान् मनीषी अपनी कुशलता से, अपने ज्ञान से सदा करते आये हैं । पृथिवी की सेवा का अभिप्राय यह है कि पृथिवी की उर्वरक शक्ति, धारणा शक्ति और जीवन दायिनी शक्ति की रक्षा विभिन्न उपायों से मनीषी विद्वान् लोग समय-समय पर करते रहते हैं । इस पृथिवी का अन्तर्तम अमृत के समान सत्य संकल्प के बल से आवृत आच्छादित है ।

मंत्र में एक भाव यह भी लगता है कि हमारी पृथिवी माता मनीषी ज्ञानवान् विद्वानों के लिए विचरण का, क्रिया-कलाप का स्थान है । इन ज्ञानी विचारशील लोगों के हृदय में सत्य से आच्छादित प्रभु की कृपा बनी रहती है अर्थात् ये ज्ञानी मनीषी लोग सत्य के आश्रय पर रहते हैं और इनके हृदय में अमृत का निवास रहता है । यहाँ विषय वासनाओं, ईर्ष्या-द्वेष आदि का स्थान नहीं होता ।

मंत्र में भूमि माता से आशा की गयी है कि हमारी मातृभूमि हमारे उत्तम राष्ट्र में, उत्तम राज्य में तेज बल धारण करावे । तेज और बल अपने में बड़े भाव गर्भित हैं । तेजस्विता वीरता का प्राण है और वीरता और तेजस्विता शरीर बल, सैन्य बल और चरित्र बल सब में निहित होती है । भाव यह हुआ कि हमारी मातृभूमि हमारे राष्ट्र के नागरिकों में उत्तम तेजस्वी चरित्रबल, बुद्धिबल और सामरिक बल सभी को धारण करावे । *

मंत्र–९

''यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति ।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा ।।''

पदार्थ :

यस्याम्=जिसमें (जिस पृथिवी पर) । आपः=जल । परिचराः=चारों ओर जाने वाले । समानी=समान रूप से, समान दृष्टि से । अहो रात्रे=रातों-दिन ।अप्रमादं=प्रमाद रहित, सावधान होकर । क्षरन्ति=गति करते हैं या परिश्रम करते हैं । सा=वह । नः=हमारे लिए । भूमिः=भूमिमाता । भूरि=अधिक, अनेक । धारा=धारा। भूरिधारा=अनेक धारा वाली । पयोः=दूध, पानी, खाने-पीने की विविध प्रकार की वस्तुएँ । दुहाम्=देती है । उक्षतु=प्रदान करे, देवे । वर्चसा=तेज के द्वारा ।

विमर्श–इस मंत्र में सर्वप्रथम जल के सम्बन्ध में कहा गया है कि हमारी मातृभूमि में समान रूप से गति करने वाले अर्थात् उपलब्ध होने वाले जल रातों-दिन समान रूप से प्रमाद रहित, बिना किसी रुकावट के प्राप्त हो रहे हैं, गति कर रहे हैं । मंत्र में समानी पद भावगर्भित है। समानी में सम्+अन्–प्राणने=समान रूप से प्राण देने वाले हैं। किसी भी देश में जल की बड़ी महिमा है । कभी-कभी देश के एक भाग में जल होता है और वह दूसरे भाग में नहीं जा पाता। कभी जल के मार्ग में पहाड़ या पठार या मरुभूमि बाधक बन जाते हैं। उस समय देश में सर्वत्र समान रूप से जल गति नहीं करता । समानी परिचराः इस बात को बता रहा है कि हमारी मातृभूमि में जल का प्रवाह समान रूप से बिना किसी रुकावट के हो रहा है ।

जल चाहे वर्षा से प्राप्त हो या धरती के भीतर से निकला हो, यह बहुमूल्य खनिज है । जल से प्राणप्रद वायुमण्डल मिलता है, जल रहने से वातावरण निर्मल प्रदूषण रहित हो जाता है । मंत्र में कहा गया है कि हमारी मातृभूमि में प्राणदाता जल चारों दिशाओं में सर्वत्र समान रूप से प्रवाहित होता रहता है ।

जल के अभाव में अन्न, फल, मूल, सभी कुछ दुर्लभ हो जाता है। बिना जल के भूमि बंजर हो जाती है । वनस्पतियाँ सूख जाती हैं, हरित-भरित शस्य श्यामलां भूमि केवल कल्पना विलास में रह जाती है । मरुस्थल में हवा तो चलती है किन्तु प्राणशक्ति का अभाव रहता है ।

श्री पण्डित दामोदर सातवलेकर ने अपने सुबोध भाष्य में परिचराः का अर्थ चारों ओर, भ्रमणशील संन्यासी अर्थ किया है । जैसे जल बिना किसी रुकावट के प्रमाद रहित चारों ओर समान रूप से गतिशील रहता है उसी प्रकार संन्यासी भी समान रूप से सम्पूर्ण देश में भ्रमण करते हुए उपदेश करते हैं । वे लिखते हैं, "जैसे मेघों का जल प्राणिमात्र को एक समान मिलता है, वैसे ही जिनका उपदेश सबके लिये एक समान होता है, ऐसे परोपकार रत संन्यासी जिस भूमि में रात-दिन उत्तम आचरण न छोड़ते हुए सदैव एक समान संचार करते हैं ।"

मंत्र में द्वितीय खण्ड में कहा गया है कि हमारी मातृभूमि जिसमें अनेक धाराओं में जल प्रवाहित है, वह मातृभूमि हमें जल, दूध से परिपूर्ण करे । भाव यह है कि जैसे जल और दूध हमारे लिए पालन-पोषण के लिए उपलब्ध होते हैं, वैसे ही धरती माता हमारे लिए पालन-पोषण करने वाली सभी वस्तुओं को प्राप्त करावे ।

मंत्र में अगली बात यह कही गयी है कि इस प्रकार जो मातृभूमि हमारे लिए अन्न, जल, दूध आदि से हमको तृप्त करती रहती है, वही मातृभूमि हमें ओजस्विता, तेजस्विता से भरपूर करके हमें शक्तिशाली बनावे । *

मंत्र–१०

"यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे ।
इन्द्रोयांचक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः ।
सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः ।।"

पदार्थ :–

याम्=जिसको (जिस पृथिवी को) । अश्विनौ=सूर्य और चन्द्रमा, भरण-पोषण करने वाले और शत्रुओं का वध करने वाले । अमिमातां=नाप रहे हैं (जैसे सूर्य और चन्द्रमा गति करते हुए पृथिवी को नाप लेते हैं) । यस्याम्=जिस पृथ्वी पर । विष्णुः=पालन करने वाला आदित्य । विचक्रमे=विशेष रूप से विक्रम करने वाला अर्थात् विशिष्ट प्रकार से पराक्रम करने वाला । यां=जिस भूमि को । इन्द्रः=ऐश्वर्य सम्पन्न शत्रु विनाशक । शचीपतिः=शक्ति का स्वामी, कार्यों में कुशल ज्ञानवान् । आत्मने=अपने लिए । अनमित्रां=शत्रुरहित । चक्रे=किया है । सा=वह (भूमि) । नः= हमारे लिए । माता भूमिः=मातृभूमि, माता के समान पालन करने वाली भूमि । पुत्राय=पुत्र के लिए । पयः=दूध । विसृजतां=प्रदान करे ।

विमर्श–इस मंत्र में प्रथम बात यह कही जा रही है कि हमारी मातृभूमि को सूर्य और चन्द्रमा रातों-दिन नाप रहे हैं अर्थात् हमारे देश पर सूर्य और चन्द्रमा की किरणें बराबर पड़ती रहती हैं । सूर्य उष्णता देकर धरती को उर्वरक बना देता है और चन्द्रमा आह्लादकता देकर वनस्पतियों को रस, स्वाद प्रदान करके पालन कर रहा है । सूर्य चन्द्रमा का मापन करना एन्ड आलंकारिक वर्णन है, जिसका अर्थ है

कि सूर्य चन्द्रमा की उपस्थिति से हमारी मातृभूमि को भरपूर लाभ मिल रहा है । सर्वव्यापक संसार के पालक विष्णु भगवान् हमारी मातृभूमि पर विशेष प्रकार से पराक्रम पुरुषार्थ की सृष्टि करके विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों को अन्न, फल, मूल को उत्पन्न करते हैं ।

जिस भूमि पर सूर्य और चन्द्रमा का पर्याप्त प्रकाश नहीं पड़ता उस भूमि की, उस मातृभूमि की उत्पादन शक्ति कम होती है । इसीलिए मंत्र में कह रहे हैं कि हमारी मातृभूमि को सूर्य और चन्द्रमा रातों-दिन शक्ति सम्पन्नं बनाये रखते हैं और हमारी मातृभूमि में पुष्टिकारक अन्न, फल, दूध, मूल सब प्राप्त होते हैं ।

हमारी मातृभूमि को शचीपति, शक्ति और विज्ञान के स्वामी अनेक प्रकार के पुरुषार्थों से शत्रु रहित बनाये रखते हैं । कहा जाता है, ''वीर भोग्या वसुन्धरा ।'' यह पृथिवी वीरों की, पुरुषार्थ करने वालों की, विक्रम और पराक्रम करने वालों की सदा मित्र बनी रहती है । आलसी, निर्बल नागरिक दूसरे देशों की दासता में पड़े रहते हैं और उनकी मातृभूमि ही उनके लिए मित्र का व्यवहार नहीं कर पाती है ।

मंत्र में अन्तिम बात यह कही गयी है कि जैसे माता अपने पुत्र के लिए, पुत्र का पालन करने के लिए दूध आदि की व्यवस्था करती है वैसे ही हमारी यह मातृभूमि हम सब पुत्रों के लिए तृप्त करने के साधन दूध आदि देती रहे और यह दूध आदि हमारे लिए ओज-तेज सब कुछ दें ! भाव यह है कि हम अपने शत्रुओं को दबाकर रखें और हमारी मातृभूमि हम पुत्रों के पालन-पोषण के लिए हमें ओज-तेज, वीरता आदि प्रदान करती रहे ।

*

मंत्र–११

**"गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिविस्योनमस्तु ।
बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम् ।
अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम् ।।"**

पदार्थ :-

गिरयः=पहाड़, छोटी पहाड़ियाँ (Hills) । पर्वताः=ऊँचे पहाड़ । (Mountains) । हिमवन्तः=बर्फ से ढके हुए । अरण्यम्=जंगल, वन । ते=तुम्हारे । पृथिवि=हे पृथिवी माता (सम्बोधन) । स्योनम्=सुख कारी, सुखदायक । अस्तु=होवें । बभ्रुम्=भरण पोषण करने वाली । कृष्णां=कृषि योग्य, खेती की हुई । रोहिणीम्=अन्न और वनस्पतियों को उत्पन्न करने वाली । विश्वरूपाम्=अनेक प्रकार के दृश्यों, प्राणियों से युक्त । ध्रुवाम्=ध्रुव, मर्यादा में स्थिर । भूमिम्=भूमि (भवन्ति भूतानि यस्याम्) सब प्राणियों के रहने और उत्पन्न होने का स्थान । पृथिवीम् (पृथु विस्तारे)=विस्तृत भूमि । इन्द्रगुप्ताम्=ऐश्वर्यशाली समर्थ बलवान् वीरों द्वारा या राजाओं द्वारा सुरक्षित । अजीतः=अपराजित । अहतः= जो हत-हिंसित न हो । अक्षतः=घाव या चोट न खाया हुआ । अध्यष्ठाम्=अधिष्ठित होऊँ, मैं निवास करूं । पृथिवीम्=विस्तृत भूमि पर । अहम्=मैं ।

विमर्श–मंत्र में बहुविध सुन्दरताओं से सम्पन्न, अनेक रूपों में सुरूप वाली भूमि माता की प्राकृतिक सुन्दरता का मनोहर वर्णन किया गया है । छोटे-छोटे पहाड़, हिम से आच्छादित गगनचुम्बी पर्वत, सुन्दर मनोहर वनस्पतियों से भरे हुए जंगल भूमिमाता के निवासियों के

लिए सुखकारी हों । मातृभूमि की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि हे विस्तृत भूमि माता ! तुम्हारी पहाड़ियाँ और पर्वत हमारे लिए औषधियों से और सुन्दर स्वास्थ्यकर फल-फूल से युक्त हों ।

हमारी पृथिवी माता अत्यन्त विस्तार वाली सब प्राणियों को निवास देनेवाली होवे, हमारी मातृभूमि सबका भरण-पोषण करने वाली हो, कृषि के योग्य, अन्न उत्पन्न करने वाली हो । हमारी मातृभूमि में सब प्रकार की वनस्पतियाँ, औषधियां, अन्न, फल, मूल उत्पन्न हों ।

ऐसी सुन्दर उपजाऊ दृश्यों वाली विस्तृत भूमि 'इन्द्रगुप्ता' होनी चाहिए । इन्द्र हैं ऐश्वर्यशाली देवता । हमारी मातृभूमि वीरता, ओज, तेज से भरे सैनिकों द्वारा सुरक्षित होनी चाहिए । गुप्त का अर्थ होता है सुरक्षित । इस प्रकार 'इन्द्रगुप्ता' का अर्थ हुआ ऐश्वर्यवान् सैनिकों अथवा प्रजा का प्रतिनिधि राजा के द्वारा सुरक्षित हो ।

मातृभूमि के नागरिक अपराजित हों । ऐसे बहादुर निवासियों को न कोई चोंट पहुंचा सके और न कोई मार सके । मंत्र में मातृभूमि से प्रार्थना करते हैं कि हे भूमि माता ! तुम हमारी माता हो, हमारा भरण पोषण करो । कृषि आदि से हम सम्पन्न बने रहें, हमारे हिमाच्छादित पर्वतों से सदा-सर्वदा जल से भरी हुई नदियां प्रवाहित हों । हमारे जंगल वनस्पतियों से भरे-पुरे सम्पन्न हों, और हमारी मातृभूमि के निवासी सदा अपराजित, बिना चोट खाये, सदा शत्रुओं पर भारी पड़ते रहें ।

मंत्र का भाव यह है कि सुन्दर सुखदायी सब प्रकार से भरण-पोषण करने वाली मातृभूमि पर पास-पड़ोस के निर्धन लोगों की निगाहें रहती हैं । ऐसी सुखदायी धन-धान्य, अन्न, औषधियों से भरपूर मातृभूमि की रक्षा के लिए वीर बहादुर तेजस्वी राजा और सैनिक सदा मातृभूमि की रक्षा करते रहें । भारतवर्ष ऐसा ही धन-धान्य से भरा हुआ प्राकृतिक सुन्दरताओं से, नदी, पहाड़, पर्वतों से भरपूर औषधि वनस्पतियों से

सम्पन्न रहा है । पश्चिम से ईरान, अफगानिस्तान, अरब के निर्धन, जंगली लोग इस शस्यश्यामला उपजाऊ, सुखदायी भूमि पर आक्रमण करते रहे हैं । जब तक हमारा देश वीर, बहादुर, तेजस्वी सैनिकों और राजाओं से सुरक्षित रहा है, तब तक भारतवर्ष के निवासी धन-धान्य से सम्पन्न सुखी रहे हैं । जब अति सम्पन्नता के कारण जीवन सुखमी, विलासी बन गया तो राजा ऐय्याश हो गये, सुरा-सुन्दरी में लीन हो गये, तब देश से शूरता, वीरता, बहादुरी, तपस्या सब नष्ट हो गयी और देश जंगली, असभ्य बर्बर लोगों के अधीन हो गया ।

इसीलिए मंत्र में प्रार्थना करते हैं कि हमारी मातृभूमि सदा तेजस्वी ऐश्वर्यशाली बहादुरों द्वारा सुरक्षित रहे और न हम कभी पराजित हों, न कभी क्षत-विक्षत होकर मरें । हमारे नागरिक सदा अपराजित, अक्षत, ऐश्वर्यशाली रहकर विस्तृत सुन्दर दृश्यों वाली मातृभूमि की रक्षा करते रहें ।

*

मंत्र–१२

**''यत्ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यंयास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः ।
तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ।।''.**

पदार्थ :

यत्=जो (पृथिवी) । ते=हमारे । मध्यम्=मध्य में । पृथिवि=हे पृथिवी माता । यच्च=जो और । नभ्यम् =मध्य, नाभि की तरह केन्द्र भाग । याः=जो । ते=तुम्हारे । उर्जः=अन्न, रस,आदि (ऊर्क्अन्नं च रसं च—नि० ९.४१) । तन्वः=शरीर से । सम्बभूवुः= उत्पन्न होते हैं । तासु=उन अन्न, रस, फल, मूल आदि में । नः=हमें, हमारे लिए । अभिधेहि=धारण करो, उन अन्न, रस, आदि से पालन करो । नः=हमको । पवस्व=पवित्र करो, पवित्र जीवन वाला बनाओ । मातः=माता, पालन करने वाली, निर्माण करने वाली । भूमिः=भूमि । पुत्रः=पुत्र, रक्षा करने वाला । अहम्=मैं । हमलोग । पृथिव्याः=पृथिवी का । पर्जन्यः=बादल, जल सेचन करने वाला । पिता=पिता, पालन और रक्षा करने वाला । सः=वह । उ=निश्चित रूप से । नः=हमको । पिपर्तु=पालन-पोषण करे ।

विमर्श—यह मंत्र पृथिवी सूक्त के मन्त्रों में सर्वाधिक उद्धृत किया जाने वाला मंत्र है । इस मंत्र में कहा गया है ''माता भूमिः, पुत्रोऽहं पृथिव्याः'' अर्थात् भूमि हमारी माता है और हम भूमि माता या मातृभूमि के पुत्र हैं ।

'भूमि हमारी माता है' इसका बड़ा सीदा-सीधा वर्णन मंत्र में उपलब्ध होता है । मंत्र में कहा गया है कि मातृभूमि के मध्य में औग

नाभिस्थान में जो कुछ मिलता हैं उसीसे अन्न, रस, उर्जा आदि हमें प्राप्त होते हैं। मातृभूमि से हम अनुरोध करते हैं कि हे मातृभूमि तुम्हारे ऊपर, भीतर शरीर में जो भी अन्न, रस प्राप्त होता है वह सब कुछ हमें धारण करवाओ। उन सबसे हमें पवित्र करो। पृथिवी के नाभिस्थान में, पृथिवी के भीतर सोना, चाँदी, तेल और भी अनेक प्रकार के खनिज द्रव्य हमें उपलब्ध होते हैं। इन खनिज द्रव्यों से पृथिवी की उर्वरा शक्ति सम्पन्न होती है। इसी से समृद्ध बलशाली अन्न, रस, फल, मूल सब हमें उपलब्ध होते हैं। पृथिवी की इसी सम्पन्नता से हमारे अन्न, फल, दूध मूल आदि में स्वास्थ्यकर ओज, तेज, बल सब कुछ सम्भव होता है। पृथिवी की इसी विशेषता के कारण मातृभूमि के नागरिकों में ओज, तेज, शूरता, वीरता सब कुछ सम्भव होती है। मातृभूमि का भक्त नागरिक धरती माता से प्रार्थना करता है कि हे धरती माता, तुम हमें अन्न, रस, फल आदि देकर हमें तेजस्वी बनाओ। हमारे जीवन में किसी प्रकार का कलुष,पाप, मलिनता न आवे, हमारा जीवन पवित्र बना रहे।

हमारा जीवन पवित्र रहे, किसी प्रकार की कलुष, बुराई न आवे। मनुष्य के जीवन में खान-पान, चरित्र, विचार आदि से पवित्रता आती है। मातृभूमि का माहौल इस तरह का बना रहे कि हमारे पालन पोषण के भौतिक साधन हमें, हमारे चरित्र को सात्विक बनाते रहें। इन भौतिक साधनों को मातृभूमि अन्न, रस, जलवायु आदि के माध्यम से हमें देती है। हम प्रार्थना करते हैं कि हमारा मन, शरीर, जीवन, आचरण सब पवित्र रहे। कहा जाता है "जैसा खाये अन्न, वैसा बने मन"। मातृभूमि का अन्न, रस, जल, आदि सात्विक होने से जीवन में, आचरण में, पवित्रता बढ़ती है। देश की पृथिवी में खनिज पदार्थों की प्रकृति भी देश के उत्पादन और भौतिक वातावरण को सात्विक या राजसी या तामसी बनाते हैं। इसीलिए भूमि माता से प्रार्थना

है—"हे मातः ! नः पवस्व" हे मातृभूमि हमें पवित्र जीवन वाला बनाओ ।

मंत्र में एक बड़ा भाव गर्भित प्रयोग है **"माता भूमिः, पुत्रोऽहं पृथिव्याः"** भूमि हमारी माता है और हम भूमि माता के पुत्र हैं । अब प्रश्न यह है कि भूमि माता कैसे है ? माता निर्माण करने वाली होती है, जन्म देने वाली जननी भी माता होती है । वह बच्चों का निर्माण करती है, हमारा पालन-पोषण करती है , हमारे जीवन, आचरण, चरित्र के निर्माण में मातृभूमि का बड़ा सहयोग होता है । किसी स्थान के लोग परिश्रमी, ईमानदार होते हैं तो किसी देश के लोग आलसी, विलासी, कामचोर होते हैं । मंत्र में प्रार्थना है कि हमारा जीवन और आचरण पवित्र बना रहे, हमारे जीवन में आलस्य, प्रमाद, कामचोरी आदि न आवे । हम अपनी सत्यनिष्ठा, ईमानदारी, चरित्र की पवित्रता के लिए सन्नाम हों, किसी प्रकार बदनाम न हों ।

मातृभूमि का निवासी घोषणा करता है—"मैं अपनी मातृभूमि का पुत्र हूँ ।" वस्तुतः पुत्र और सन्तान में थोड़ा अन्तर है । सन्तान तो बेटे-बेटियां हैं । किन्तु पुत्र उसे कहते हैं जो नरक से, कष्ट, दुःख से रक्षा करे । पुत्र की व्याख्या है —**"पुन्नामनरकात् त्रायते असौ पुत्रः"**—पुत्र उसे कहते हैं जो माता को दुःख से बचाये । जैसे माता के साथ, जन्मदात्री जननी के साथ आत्मीयता भरा प्यार होता है उसी प्रकार जन्मभूमि के साथ आत्मीयता भरा प्यार होता है । शत्रुओं से मातृभूमि की रक्षा करने के लिए देश के सपूत अपने जीवन को बलिदान कर देते हैं । मातृभूमि की रक्षा में, मातृभूमि की जय जयकार करते असंख्य वीर अपने जीवन का बलिदान कर देते हैं, किन्तु अपनी मातृभूमि को शत्रुओं के हाथ में दास या गुलाम नहीं बनने देते। बड़ी प्रसिद्ध उक्ति है **"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"**—जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है ।

मंत्र में एक और बड़ा भाव-गर्भित वर्णन आया है—**''पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु''** अर्थात् मेघ, बादल हमारे पिता हैं, हमारा पालन करते हैं। मेघ निश्चित रूप से हमारा पालन-पोषण करें। मेघ वृष्टि के द्वारा जल बरसाते हैं। वृष्टि न होने से भूमि माता की उत्पादनशीलता घट जाती है। अन्न, फल, वनस्पति, औषधि आदि उत्पन्न करने में असमर्थ हो जाती है। बादल से वृष्टि होती है और उसी से अन्न आदि पैदा होते हैं। गीता में भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं—

''अन्नाद्भवन्तिभूतानि, पर्जन्यादन्नसम्भवः'' अर्थात् सारे प्राणी अन्न से पालित होते हैं और अन्न, मेघ की वृष्टि से उत्पन्न होते हैं इसीलिए पर्जन्य, मेघ हमारे पिता हैं वह हमारा पालन करते हैं।

*

मंत्र–१३

''यस्यां वेदि परिगृह्णन्ति भूम्यां, यस्या यज्ञं तन्वत विश्वकर्माणः यस्यां मोयन्ते स्वरवः पृथिव्यामूर्ध्वाः शुक्रा आहुत्याः पुरस्तात्। सा नो भूमिर्वर्धयद्वर्धमाना ।।''

पदार्थ :

यस्माम्=जिसमें, जिस पर (भूमि पर)। वेदिम्=वेदि को (यज्ञ की वेदि को)। परिगृह्णन्ति=ग्रहण करते हैं, बनाते हैं। भूम्याम्=भूमि पर। यस्याम्=जिस पर। यज्ञम्=यज्ञ को, सहयोग मूलक समन्वय सामञ्जस्य के कार्य। तन्वते=विस्तार करते हैं। विश्वकर्माणः= संसार के उपकार के लिए काम करने वाले विश्कर्मा लोग। यस्याम्=जिस पर। मीयन्ते=माप करके बनाते है। स्वरवः=यज्ञ के स्तम्भ। पृथिव्याम्=पृथिवी पर। ऊर्ध्वाः=ऊंचे-ऊंचे। शुक्राः=उज्जवल, पवित्र। आहुत्याः=आहुति से। पुरस्तात्=पूर्व, पहले। सा=वह। नः=हमको। भूमिः=भूमि। वर्धयद्=बढ़ावे। वर्धमाना=वृद्धि को प्राप्त हुई।

विमर्श—इस मंत्र में विश्वकर्मा लोगों के द्वारा यज्ञ को विस्तार देने का वर्णन है। सर्वप्रथम विश्वकर्मा पद पर विचार करते हैं। विश्वकर्मा का समास देखें तो विश्वानि कर्माणि करोति इति विश्वकर्मा। विविधकर्मसु निपुणः अखिलेषु कर्मसु कुशलः (दयानन्दः यजुः १७/२३ भाष्ये)। इसका भाव यह हुआ कि जो सब प्रकार के यज्ञ कर्मों में सुदक्ष, कुशल हों वे विश्वकर्माणः हैं।

विश्वकर्मा का एक और अर्थ बनता है—

"विश्वस्मै कर्माणि कुर्वन्ति ते" सम्पूर्ण विश्व के लिए जो कल्याणकारी, लाभदायक कामों को करें, वे विश्वकर्मा हैं ।

इसी प्रकार यज्ञ शब्द बड़ा व्यापक है । स्वामी दयानन्द जी ने अग्निहोत्र, देवयज्ञ से लेकर अश्वमेध पर्यन्त सभी यज्ञों का यज्ञ में परिगणन किया है । साथ ही शिल्प आदि के कार्य, सभी संगठन, समन्वय, सामंजस्य मूलक कार्य यज्ञ कार्य हैं । यज्ञ शब्द की इस विस्तृत व्याख्या में सारे सामाजिक, प्रशासनिक, उत्पादन मूलक सभी कार्यों का समावेश हो जाता है । आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति के अनुसार—

"सामुदायिकं योगेक्षेममुद्दिश्य समुदायांगतया क्रियमाणं कर्म यज्ञः। "यज देव पूजा-संगतिकरण-दानेषु इत्यस्माद्धातो यजयाचेति (अष्टा० ३/३/१०) सूत्रेणनाङि प्रत्यये यज्ञशब्दो निष्पद्यते । इज्यते संमत्य क्रियते इति यज्ञो लोकोपकारकं कर्म । यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म श० १/७/१/५ ।" यज्ञो हि श्रेष्ठतमं कर्म । तै० ३/२/१/४।।

इस प्रकार मंत्र में यह कहा गया है कि विश्वकर्मा लोग, सभी कार्यों में दक्ष लोग अग्निहोत्र से लेकर कृषि, शिल्प, उद्योग-धन्धे, व्यवसाय, सामाजिक संगठन, सभी परोपकार मूलक कार्य संसार के उपकारार्थ अनेक प्रकार के कार्यों का विस्तार करते हैं ।

जैसे, अग्निहोत्र आदि देव यज्ञों को करने के लिए यज्ञवेदी का निर्माण किया जाता है, उसी प्रकार शिल्प आदि कार्यों के लिए भी स्थान, भवन, कारखाना, कार्यालय सबका निर्माण किया जाता है, जिसके लिए वेदी को बनाते हैं । यह सारा कार्य धरती माता के ऊपर ही किया जाता है ।

यज्ञवेदी का स्तम्भ होता है और उसी स्तम्भ पर यज्ञवेदी टिकी रहती है । हमारे सभी परोपकारी यज्ञकार्यों के स्तम्भ उज्ज्वल चमकते हुए विशाल ऊँचे होने चाहिए । सभी यज्ञकायों में "इदन्न मम" की

भावना से त्याग पूर्वक आहुति दी जाती है और उससे पूर्व ही यज्ञवेदी और उसके स्तम्भ का निर्माण किया जाता है ।

यज्ञ आदि के द्वारा जैसे वृष्टि होती है और वृष्टि से पृथिवी माता की उर्वरक शक्ति बढ़ जाती है और उर्वर पृथिवी फिर हमको बढ़ाती है, सम्पन्न बनाती है । उसी प्रकार सारे यज्ञकार्यों से संसार की वृद्धि होती है और उसी वृद्धि से हम सब पृथिवी निवासियों का वर्धन होता है, हम सुखी सम्पन्न होते हैं ।

*

मंत्र– १४

''यो नो द्वेषत्पृथिवि यः पृतन्याद्योऽभिदासान्मनसा यो वधेन। तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि ।।''

पदार्थः–

यः=जो (शत्रु, आक्रमणकारी) । नः=हमसे, हमारे राष्ट्र से । द्वेषत्=द्वेष करता है, आक्रमण करता है । यः=जो (आक्रमणकारी) । पृतन्यात्=सेना के द्वारा (पृत—पृतना सेना) । अभिदासात् हमारा क्षय करता है, हमें दास बनाता है (दसु उपक्षये) । मनसा=मन के द्वारा । यः=जो । वधेन=हमारा क्षय करता है, हमारे राष्ट्र को दास बनाता है । तम्=उसको (शत्रु को) । नः=हमारी । भूमे=हे मातृभूमि । रन्धय=नष्ट कर दो । पूर्वकृत्वरि=हमारा पालन पोषण करने वाली, पहले ही शत्रु के विनाश से हमारी रक्षा करने वाली ।

विमर्श–कोई भी राष्ट्र, स्वयं शान्तिप्रिय हो सकता है किन्तु यह इस बात की गारंटी नहीं है कि कोई दूसरा राष्ट्र उससे द्वेष भाव नहीं रखेगा । संसार के इतिहास में यह बहुत बार देखा गया है कि शान्ति प्रिय राष्ट्रों को युद्धप्रिय राष्ट्र अपने स्वार्थ के लिए अपने अधिकार में लेने का प्रयास करते हैं । उस अवस्था में दुष्ट राष्ट्र शान्तिप्रिय राष्ट्रों पर आक्रमण कर देते हैं और उन्हें सेना और अस्त्र-शस्त्रों की सहायता से अपने अधिकार में ले लेते हैं । प्रायः सम्पन्न शक्तिशाली राष्ट्र निर्बल राष्ट्रों को बलात् शत्रु घोषित करके उन पर आक्रमण करने का बहाना खोज निकालते हैं और सीधे सरल, लड़ाई न चाहने वाले राष्ट्रों को अपना दास बनाकर उनके धन, वैभव, प्राकृतिक साधनों का

शोषण करने लगते हैं । ऐसे आक्रमणकारी स्वार्थी राष्ट्र पराजित राष्ट्र की मानसिकता को और भी अधिक निर्बल बना देते हैं । इस स्थिति में पराजित राष्ट्र सैनिक बल में तो निर्बल था ही अब मानसिक और वैचारिक रूप में भी निर्बल हो जाता है ।

इस भूमिका में प्रस्तुत मंत्र के भाव हृदयंगम करने में सरल हो जाते हैं । इस मंत्र में देशभक्त, राष्ट्रभक्त अपनी मातृभूमि से प्रार्थना करता है । देश भक्त मातृभूमि को सम्बोधित करता हुआ, मातृभूमि से प्रार्थना करता है कि हे माँ ! संसार में जो लोग हम पर सेना द्वारा आक्रमण करके हमारे सैनिकों को अस्त्र-शस्त्रों से मारकर नष्ट कर देना चाहते हैं, उनको तू 'रन्धय' रौंद डाल अर्थात् उन्हें सब प्रकार से दबाकर नष्ट कर दे । सेना द्वारा आक्रमण करने वालों का अत्याचार आसानी से समझ में आता है । मंत्र में यह भी कहा गया है कि जो शत्रु मनसा हमारा पराभव करना चाहते हैं, हे मातृभूमि ! उन्हें भी नष्ट कर दे ।

मंत्र में ''मनसा अभिदासात्'' बड़ा भावगर्भित प्रयोग है । सेना की शक्ति से, अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग से पराजित हो जाना, दूसरे राष्ट्र के अधीन हो जाना उतना भयानक नहीं है जितना मानसिक रूप से, मन और विचारों से अपने को तुच्छ, हीन समझ लेना भयानक है ।

चतुर शत्रु सेना द्वारा विजय प्राप्त करने को अधिक महत्व नहीं देते हैं । सेना द्वारा पराजित राष्ट्र यदि सांस्कृतिक रूप से, वैचारिक रूप से पराजित नहीं होता तो आज नहीं तो कल, वह सैनिक दासता को तोड़कर स्वतंत्र हो जायेगा । इसके लिए विजयी राष्ट्र पराजित राष्ट्रों की सभ्यता, संस्कृति, भाषा, इतिहास आदि को निर्बल और घटिया प्रमाणित करने लगते हैं और पराजित राष्ट्र के मन और विचार को निर्बल बना देते हैं ।

एक उदाहरण द्वारा मंत्र के इस भाव को समझने का प्रयास करते हैं । हमारे देश में, भारतवर्ष में अंग्रेज लोग छल प्रपंच के द्वारा, झूठ

बोलकर, देशी राजाओं को आपस में लड़ाकर भारतवर्ष में अधिकार कर बैठे। अंग्रेज जाति की धूर्ततापूर्ण कूटनीति ने सरल भारतीयों को ठग लिया और भारतवर्ष को अंग्रेजी साम्राज्य का अंग तो बना लिया किन्तु इस विजय में चालाकी अधिक सैनिक शक्ति कम थी। अंग्रेज कहने लगे कि यूरोप की श्वेत जातियां एशिया की काली (Coloured) जातियों से बढ़चढ़ कर हैं। यूरोप की जातियां स्वभाव से शासक हैं और एशिया के लोग अपनी प्रकृति से शासित, दास हैं। उन्होंने पढ़ाना शुरू किया कि यूरोप की संस्कृति अंग्रेजों की संस्कृति, इंग्लैंड की सभ्यता, भारतवर्ष की सभ्यता और संस्कृति से बढ़-चढ़ कर है। भारतवर्ष की सभ्यता, संस्कृति लोगों को निर्बल बनाती है। उन्होंने अंग्रेजी भाषा को भारतीय भाषाओं की तुलना में अधिक समर्थ बताना शुरू किया। सरकारी कामों में अंग्रेजी का प्रयोग अधिक होने लगा और अंग्रेजी जानने वालों का सम्मान और दर्जा बढ़ा दिया गया। देशी भाषा जानने वालों को अंग्रेजी जानने वालों के अन्दर नौकरी मिलने लगी। यह सब मानसिक पराजय की नीति थी। इसीलिए मंत्र में यह कहा गया हैं कि हे मातृभूमि ! तुम उन सब शत्रुओं को रौंद डालो जो हम पर सेना के द्वारा आक्रमण करते हैं और जो हमें मानसिक रूप से निर्बल बनाते हैं। मातृभूमि की समर्थता का बखान करते हुए मंत्र कहता है कि तू दोनों प्रकार के शत्रुओं को नष्ट कर दे, वे हम पर आक्रमण करें इससे पूर्व ही तुम उनको रौंद डालो, कुचल डालो, उनका सब प्रकार से विनाश कर डालो।

*

मंत्र– १५

त्वज्जातास्त्वयिचरन्तिमर्त्यास्त्वं बिभर्षिद्विपदस्त्वंचतुष्पदः। तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति।

पदार्थः–त्वत् जाताः=तुझसे उत्पन्न हुए (पार्थिव शरीर भूमि माता से ही प्राप्त होता है)। त्वयि=तुम्हारे ऊपर। चरन्ति=चलते हैं, विचरण करते हैं। मर्त्याः=मरण धर्मा मनुष्य। त्वं=तुम (भूमिमाता)। बिभर्षि=भरण पोषण करती हो। द्विपदः= दो पैरों वाले मनुष्य, प्राणी को। चतुष्पदः=चार पैरों वाले पशु। तव=तुम्हारे। इमे=ये। पृथिवि=हे पृथिवी माता। पञ्च=पाँच प्रकार के। मानवाः=मनुष्य। येभ्यः=जिनके लिए। ज्योतिः=प्रकाश। अमृत= अमृत। मर्त्येभ्यः=मरणशील मनुष्यों, पशु, प्राणियों के लिए। उद्यन्=उदय होता हुआ। सूर्यः=सूर्य। रश्मिभिः=किरणों द्वारा। आतनोति=विस्तृत करता है।

विमर्श :- इस मंत्र में किसी राष्ट्र में रहने वाले मनुष्य अपनी मातृभूमि से निवेदन कर रहे हैं कि हे भूमिमाता ! सारे मनुष्य, पशु-पक्षी, जो भी मरणशील प्राणी हैं, वे सब तुमसे ही पैदा होते हैं। सभी प्राणियों का स्थूल शरीर मिट्टी से ही बनता है। राष्ट्र भक्त मातृभूमि से कह रहा है कि हम सबका शरीर भूमिमाता से ही बना है और भूमिमाता के ऊपर ही हम विचरण करते हैं। यहाँ विचरण करना या चलना-फिरना एक प्रतीक है। मनुष्य का जितना कार-बार, उद्यम व्यवसाय, क्रिया-कलाप है, सब कुछ पृथिवी के ऊपर ही होता है और भूमिमाता अन्न, जल, वायु, सर्य के प्रकाश, बादल की वृष्टि आदि से सभी का भरण-पोषण

करती है । मंत्र में मनुष्यों के पाँच भाग किये गये है । वेद की शिक्षा में मनुष्य के चार वर्ण होते हैं (१) ब्राह्मण (२) क्षत्रिय (३) वैश्य (४) शूद्र अर्थात् सेवक और (५) इन चारों वर्णों से पृथक् निषाद या वन में रहने वाले वनवासी, गिरिवासी आदि जो वर्णों के सामाजिक जीवन से पृथक् होते हैं । ऐसा भी अनुमान है कि पञ्चमानवाः से आजकी 'पंचायत' का भाव, सिद्धान्त विकसित हुआ है ।

सामाजिक संगठन में चारों वर्णों का बड़ा महत्व है । सामाजिक रूप में ये चारों वर्ण आपस में ऊँच-नीच नहीं होते हैं । ये वर्ण जन्म से भी नहीं होते हैं । ये वरण किये जाते हैं । जैसे आजकल अपने युग में व्यक्ति चुनाव करता है कि वह डाक्टर बने या इंजीनियर, एकाउन्टेन्ट बने या लिपिक, सेना में जाये या पुलिस में जाये, खेती करे या व्यवसाय करे । केवल बात इतनी है कि व्यक्ति में उस काम की योग्यता होनी चाहिए । इसी प्रकार पुराने समय में वर्ण व्यवस्था ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र आदि की व्यवस्था गुण, कर्म, योग्यता से मनुष्य अपने लिए चुनता था । ऋषियों ने कहा है—'वर्णः वृणोतेः' वर्ण का वरण किया जाता है । हाँ, वरण वही कर सकता है जिसमें गुण हो, योग्यता हो । केवल इच्छा करने से या चाहने मात्र से कोई डाक्टर या इंजीनियर, अथवा सैनिक सिपाही या व्यवसायी नहीं हो जाता, उसमें योग्यता होनी चाहिए । इसी प्रकार केवल चाहने मात्र से कोई ब्राह्मण या क्षत्रिय या अन्य वर्ण का नहीं बनता । उसमें गुण, कर्म, योग्यता होनी आवश्यक है ।

वेद के महान् विद्वान् पंडित बुद्धदेव विद्यालंकार जी (स्वामी समर्पणानन्दजी) ने वर्ण धर्म को समझने के लिए यह कहा है कि मानव समाज के चार अभाव की समस्याएँ होती हैं—(१) ज्ञान का अभाव (२) न्याय का अभाव (३) भौतिक साधन सामग्री अन्न, वस्त्र आदि का अभाव (४) इन सब अभावों में शारीरिक सहयोग के लिए सेवा का अभाव ।

जो लोग ज्ञान के अभाव को दूर करके ज्ञान, विद्या, शिक्षा आदि के प्रचार का व्रत लेते हैं वे ब्राह्मण वर्ग के हैं । जो अन्याय को दूर करके समाज में शान्ति सुव्यवस्था करते हैं और जो विदेशी शत्रुओं की सेनाओं से युद्ध करके अपने देश की स्वतन्त्रता की रक्षा करते हैं, वे क्षत्रिय होते हैं । इसी प्रकार जो रोटी, कपड़ा और मकान की समस्या को दूर करते हैं, कृषि, पशु-पालन, उद्योग-धन्धे आदि करके देश के भौतिक अभाव को दूर करते हैं, वे वैश्य होते हैं । चौथी श्रेणी में वे लोग होते हैं जो इन तीन श्रेणी के कामों में शारीरिक परिश्रम करके सहयोग करते है । आज की भाषा में उन्हें चौथे दर्जे का कर्मचारी ('D' Grade और 4th Grade Fmployee) कहते है ।

वेद की व्यवस्था में इन चारों वर्गों में कोई छूत-अछूत या खानपान का भेद-भाव नहीं होता । हाँ सामाजिक सम्मान और प्रतिष्ठा तो आज भी न्यूनाधिक रहती ही है । ब्राह्मण गुरु होता है और वह सबके सम्मान का पात्र होता है । इसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्य की भी स्थिति है ।

वेद में 'पंच जनाः' पद का प्रयोग हुआ है । इन पाँच श्रेणियों में चार तो वर्ण है और पाँचवा वर्ग उन लोगों का है जो सामाजिक संगठन, वर्ण व्यवस्था से बाहर हैं । इनमें प्रायः विद्वान् लोग निषाद वर्ग को लेते है और सामान्य रूप में निषाद का अर्थ चोर, डाकू, लूटेरा होता है । किन्तु हमारी समझ में यह पाँचवा वर्ग निषाद अनिवार्य रूप से चोर, डाकू नहीं है । कुछ लोग वनवासी, गिरिवासी, सामाजिक संगठनों से अलग रहकर भी वन सम्पदा से अपना जीवन निर्वाह अच्छे कामों में, धन्धों में रहकर करते है । यही पाँचवा वर्ग है ।

मंत्र के अन्तिम खण्ड में यह कहा गया है कि हे मातृभूमि तुम्हारे इन मरणशील पुत्रों के लिए उदय होता सूर्य अपनी किरणों के द्वारा अमृत ज्योति को विस्तृत करता है । इसमें ध्यान देने की महत्वपूर्ण

बात यह है कि मातृभूमि में सूर्य की किरणें अमृत बरसाती हैं । वेद और उपनिषद् में कई स्थान पर यह वर्णन मिलता है कि सूर्य अपनी किरणों से संसार को प्राण प्रदान करता है । साथ ही सूर्य की किरणें कृमिकीट, रोग उत्पन्न करने वाले प्राणियों का नाश कर देती हैं । सूर्य की किरणों से सड़ांध, वायुमण्डल का दोष आदि नष्ट हो जाता है । इसीलिए कहा है कि सूर्य अपनी रश्मियों से पृथिवी पर जीवन धारण करने वाले मनुष्य, पशु, पक्षी, वनस्पति आदि प्राणधारियों को अमृत प्रदान करता है ।

*

मंत्र–१६

'ता नः प्रजाः सं दुहतां समग्रा वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम् ।।'

पदार्थः–

ताः=वे । नः=हम लोग, हमारी । प्रजाः=प्रजाएँ, सन्तान (पूर्व मंत्र में वर्णित पंच जनाः) । सं=अच्छी तरह । दुहताम्=दोहन करें (दुह् प्रपूरणे) । समग्राः=सम्पूर्ण । वाचः=वाणी को । मधु=मधुर मीठी वाणी । पृथिवि=हे पृथिवी माता । धेहि=धारण करो । मह्यम्=हमारे लिए ।

विमर्श–प्रस्तुत मंत्र में वाणी की मधुरता के लिए मातृभूमि से प्रार्थना की गई है । वाणी कर्कश भी होती है और कटु भी होती है । मंत्र में प्रार्थना यह की गयी है कि हे पृथिवी माता ! तुम्हारी सारी प्रजा की सम्पूर्ण वाणी में मधुरिमा, मिठास आ जाये । सारी प्रजाओं में पूर्व मंत्र में वर्णित पंच जनाः—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और इन वर्णों से जो बाहर हैं, उन सब की वाणी में मिठास आ जाये । प्रायः ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अपने चतुर्थ वर्ग के कर्मचारी के साथ डाँट फटकार की भाषा बोलते हैं । ऐसी भाषा में सहृदयता और मिठास का अभाव हो जाता है । शासन करने वाले, पुलिस, दण्डाधिकारी, शासक आवश्यकता पड़ने पर दण्ड का विधान करें, किन्तु बिना प्रयोजन के, व्यर्थ में बेचारे कर्मचारी को कटु न बोलें, गाली-गलौज न करें, व्यर्थ में तू-तूकार न करें । सबकी वाणी में शिष्टता और मधुरता बनी रहे ।

वाणी ज्ञान का संवाहक है, वाणी भावनाओं का संवाहक (Vehicle) है । गुरु वाणी के माध्यम से ही अपने विद्यार्थी को विद्या

दान करता है । विद्या देने में गुरु के हृदय में आत्मीयता, स्नेह, सहानुभूति होनी चाहिए । इससे शिष्य विद्या का ग्रहण सरलता से कर लेता है । यही बात शासक, व्यवसायी सबके संबंध में लागू होती है ।

प्रस्तुत मंत्र में मातृभूमि से प्रार्थना की गयी है कि प्रभु कृपा से सभी वर्ग की प्रजाएं सम्पूर्ण ज्ञान, विज्ञान का परिपूर्ण दोहन करें और हम लोग अपने जीवन में आपकी कृपा से मधुरिमामय बने रहें । परस्पर कभी कटुता, कर्कशता हममें कभी न आ पावे ।

कई चिन्तक सामाजिक प्रगति में वर्ग संघर्ष (Class Strugle) की अनिवार्यता बताते हैं । यह मंत्र वर्ग संघर्ष नहीं बल्कि वर्ग समन्वय, वर्ग सामंजस्य की आवश्यकता पर बल दे रहा है । मालिक हो या मजदूर, शासक हो या शासित, सबका एक ही उद्देश्य है कि सम्पूर्ण समाज आत्मीयता और मधुर वातावरण में प्रगति करे । इसी लिए मंत्र में मधुर वाणी, मधुर व्यवहार पर इतना बल दिया गया है । विभिन्न वर्ग एक-दूसरे के शत्रु नहीं बल्कि स्नेह से मधुर व्यवहार के कारण सामाजिक उन्नति करते चलें । ठीक ही कहा है –

'मीठी बानी बोलिए, मन का आपा खोय ।
औरन को शीतल करें, आपहुँ शीतल होय ।।'

*

मंत्र– १७

'विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम्।
शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा ।।'

पदार्थः–

विश्वस्वम्=सबको उन्नत करने वाली (विश्‌वसूः)। मातरम् =माता (निर्माण करने वाली और पालन पोषण करने वाली)। ओषधीनां=औषधि वनस्पति आदि की। ध्रुवां=ध्रुव, अपने नियम, सीमा, मर्यादा में स्थिर। भूमिं=भूमि। पृथिवीं=पृथिवी विस्तार वाली (पृथु विस्तारे)। धर्मणा=धर्म के द्वारा। धृताम्=धारण की हुई। शिवाम्=कल्याण करने वाली। स्योनाम्=सुख देने वाली। अनुचरेम=अनुकूलता पूर्वक, सुख सुविधा अनुसार विचरण करें। विश्वहा=सदा-सर्वदा।

विमर्श–यह मंत्र मातृभूमि के स्नेहपूर्ण पालन-पोषण की व्याख्या कर रहा है। भूमि माता सभी प्रकार की उत्तम औषधियाँ, वनस्पतियाँ, वृक्ष, लता आदि का माता की तरह पालन पोषण करती है। ध्यान में रखने लायक तथ्य यह है कि यव (जौ) आदि अन्न भी औषधियों में ही सम्मिलित हैं। हमारी भूमि माता अपने धर्म में, अपने नियम में, अपने पालन पोषण में ध्रुव रहती है। अपने पालन-पोषण से कभी हटती नहीं है।

मंत्र में एक बड़ी महत्वपूर्ण बात यह कही गयी है कि पृथिवी अपने पालन-पोषण में ध्रुव तो रहती है किन्तु इस ध्रुवता के पीछे एक शर्त यह लगी हुई है कि हमारी पृथ्वी माता का भरण पोषण धर्म के अनुकूल होते रहना चाहिए। सत्य, न्याय, सदाचार, शूरता, वीरता आदि के द्वारा मातृभूमि के निवासी पृथिवी की रक्षा करें। अपनी मातृभूमि की सेवाओं को सुरक्षित बनाये रखने के लिए राष्ट्र

के नागरिक शत्रुओं से मातृभूमि की रक्षा करें अर्थात् शत्रु हमारी मातृभूमि को उजाड़ न सकें ।

'धर्मणा धृताम्' की एक भावना यह भी है कि मातृभूमि की रक्षा राष्ट्र के नागरिक धर्म पूर्वक, न्याय पूर्वक, प्रकृति के नियमों के अनुकूल करते रहें । धरती में से कितना जल, कितना खनिज आदि का दोहन हो रहा है यह धर्म के अनुकूल बना रहे तभी पृथिवी धर्म के द्वारा धारित की हुई होती है । मनुष्य वनस्पतियों का, जंगलों का, पहाड़ों का, उपयोग करता है । नदियों पर बाँध बनाता है । यह सब स्वार्थी कृत्रिम दोहन जब तक धर्म के अनुकूल बना रहता है, तब तक भूमि औषधि वनस्पतियों के साथ पशु-पक्षियों और मनुष्यों को धारण करती रहती है, अन्यथा अशान्ति भी होती है । कभी भूचाल आता है, कभी तूफान आता है, कभी सुनामी जैसी प्राकृतिक आपदाओं से मनुष्य संकट में पड़ जाता है । मनुष्य प्रकृति का दोहन करके अपनी सभ्यता और संस्कृति को सुन्दर बनाना चाहता है किन्तु प्रकृति के नियमों की अवहेलना करने के कारण मनुष्य समाज को अशान्ति और विपदाओं को भोगना पड़ता है । राष्ट्रकवि श्री रामधारी सिंह दिनकर जी ने सर्वथा ठीक ही लिखा है—

'छीन-छीन जल-थल की थाती संस्कृति ने निज रूप सजाया ।
विस्मय है तो भी न शान्ति का, दर्शन एक पलक को पाया।'

मंत्र में कहा गया है कि हमारी भूमि माता कल्याण करने वाली है, हमारी भूमिमाता सुख देने वाली है और हम सदा सुख पूर्वक उस पर विचरण करते हैं । इस कल्याण और सुख प्राप्ति के पीछे भी हम पृथिवी के नियमों का, भूमिमाता के स्थायी नियमों का उल्लंघन न करें । हम भूमिमाता के धर्म, नियम, अनुशासन को विखण्डित न करें और भूमि माता अपने धर्म को धारण किये रहे तो हमें सब प्रकार से सुख-शान्ति मिलती है । सभी प्रकार की औषधियाँ, फल, फूल और अन्न आदि से हमारा पालन-पोषण हमारी विस्तृत भूमिमाता करती रहती है ।

*

मंत्र–१८

'महत्सधस्थं महती बभूविथ महान्वेग एजथुर्वेपथुष्टे ।
महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम् ।
सा नो भूमे प्र रोचय हिरण्यस्येव संदृशि मा नो द्विक्षत कश्चन ।।'

पदार्थ:–

महत्सधस्थं=साथ-साथ मिलकर रहने का महान् विशाल स्थान । (सधस्थं=सह=स्थ=साथ रहना) । महती=बहुत महान् (महान्, विशाल, विस्तृत, भूमि) । बभूविथ=है, हुई है । महान=महान् । वेगः=गति । एजथुः=चलना, गति करना । वेपथुः=हिलना-डुलना । ते=तुम्हारा । महान्=महान् । इन्द्रः=ऐश्वर्यशाली प्रभु, ऐश्वर्यशाली बलवान् राजा । रक्षति=रक्षा करता है । अप्रमादम्=प्रमाद रहित होकर, सावधानी से । त्वा=त्वां (तुमको) । सा=वह भूमि । नः=हमको । भूमे=हे भूमि माता । प्ररोचय=तेजस्वी जीवन वाला बनाओ । हिरण्यस्य=स्वर्ण, तेजस्वी का । इव=तरह । संदृशि=दिखने वाली । मा=नहीं । नः=हमसे । द्विक्षत =द्वेष करे । कश्चन=कोई भी ।

विमर्श–हमारी मातृभूमि महान् है । मातृभूमि की महिमा का स्वरूप कई तरह का होता है । मंत्र में यह कहा गया है कि हमारी मातृभूमि इतनी महान् है कि हम सब अपने देश में, अपने राष्ट्र में मिलजुल कर साथ-साथ आनन्द से रह सकते हैं । हमारी मातृभूमि का इतना विस्तार है कि हम अपने राष्ट्र के नागरिक कभी अति जनसंख्या (Over Population) का दंश या कष्ट नहीं सहते, इस समस्या का सामना नहीं करते । हमारी जो भी जनसंख्या है वह बेकारी, बेरोजगारी, भूखमरी आदि की समस्या को नहीं भूलती । हमारी मातभूमि में साथ-

साथ रहने के सभी साधन उपस्थित हैं । अन्न, वस्त्र, कारबार, खेती, व्यवसाय सब कुछ इतना प्रचुर है कि हम सब साथ-साथ मिलकर रह सकते हैं।

मातृभूमि की महत्ता का स्वरूप विद्या, व्यवसाय, उद्योग-धन्धे, सेना, हथियार सब कुछ में निहित है । हमारी मातृभूमि इतनी महान् है कि हमें किसी का, किसी राष्ट्र का, किसी देश का मुंह ताकने की आवश्यकता नहीं है ।

हमारी धरती, हमारी मातृभूमि का वेग बड़ा महान् है । यहां भूमि माता का हिलना-डुलना सभी कुछ वेग से भरपूर है । यह हिलना-डुलना भूचाल या भूकम्प (Earthquake) से संबंधित नहीं लगता । यह मातृभूमि की उन्नति या शत्रु के प्रति गति के वेग से संबंधित लगता है, हमारे राष्ट्र का राजा, शासक महान् ऐश्वर्यशाली है । ज्ञान में, धन में, उद्योग-व्यवसाय में, वैज्ञानिक तकनीक (Science and Technology) में राष्ट्र का महान ऐश्वर्य है । किसी भी राष्ट्र से हम पिछड़े हुए नहीं है । ऐसा सम्पन्न, सब प्रकार से ऐश्वर्यशाली राजा या राज्य व्यवस्था पूरी सावधानी से हमारे राष्ट्र की रक्षा करता है । राष्ट्र की रक्षा में न सैनिक दृष्टि से प्रमाद, न ज्ञान-विज्ञान—तकनीक की दृष्टि से प्रमाद है । कृषि, उद्योग, व्यवसाय सब तरह से हमारा राष्ट्र अपनी रक्षा करने में समर्थ है और अपनी रक्षा करता रहता है।

मंत्र में यह कहा गया है कि हमारी मातृभूमि हमें हिरण्य की तरह उदीप्त, तेजस्वी जीवनवाला बनावे । ध्यान यह रखना है कि हिरण्य का मोटा अर्थ स्वर्ण होता है । किन्तु शतपथ आदि ग्रन्थों में कहा गया है—'यशोवै हिरण्यम्', 'ज्योतिर्वै हिरण्यम्' इत्यादि अर्थात् यश, ज्योति, तेज, प्रतिष्ठा सभी कुछ हिरण्य कहलाता है । मंत्र में राष्ट्र का नागरिक अपनी मातृभूमि से अनुरोध करता है कि हे मातृभूमि! हमें तू यश से, तेज से, उदीप्त यशस्वी, सुवर्ण की तरह

तेजस्वी बना दे जिससे कि कोई भी राष्ट्र या देश या व्यक्ति हमारे राष्ट्र से कभी द्वेष न करे ।

कोई देश या राष्ट्र हमारे राष्ट्र से द्वेष न करे । हम सारे संसार के सभी राष्ट्रों के साथ इतने प्यार और इतनी आत्मीयता से वर्ताव करते रहें, सबसे ऐसा मधुर संबंध बनाये रखें । किन्तु यह कुछ आवश्यक नहीं कि सभी राष्ट्र हमारी सज्जनता या मधुर संबंध का सम्मान करें । यह भी हो सकता है कि कोई दुष्ट इर्ष्यालु राष्ट्र हमारी सज्जनता को हमारी निर्बलता समझकर हमसे द्वेष करे या हमसे शत्रुता करे । हमारी प्रार्थना यह है कि हमारी मातृभूमि हमको इतना तेजस्वी बना दे कि हम ऐसी दुश्मनी करने वाले राष्ट्र के बैर, विरोध का ठीक उत्तर दे दें । हमारे राष्ट्र की शक्ति और उग्रता को देखकर कोई राष्ट्र हमारी ओर आँख न उठावे । हमसे द्वेष न करे, हमसे दुश्मनी न करे ।

*

पूर्व के १८ मंत्रों में भूमि के संबंध में चर्चा है । आगे भूमि में उपस्थित अग्नि की चर्चा है ।

मंत्र–१९

'अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो बिभ्रत्याग्निरश्मसु ।
अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः ।।'

पदार्थः–

अग्निः=भौतिक अग्नि, तेज । भूम्याम्=भूमि में, भूमि पर । ओषधीषु=सभी औषधियों में । अग्निम्=अग्नि को । आपः=जल। बिभ्रति=धारण करते हैं । अग्निः=अग्नि । अश्मसु=पाषाणों में । अग्निः=शरीर को गर्म रखने वाली अग्नि, अन्न को पचाने वाली वैश्वानर अग्नि । पुरुषेषु-अन्तः=मनुष्य के शरीर में, शरीर के भीतर। गोषु=गायों में, गायों के शरीर में । अश्वेषु=घोड़ों के शरीर में । अग्नयः=पाचन शक्ति के रूप में वैश्वानर अग्नि के साथ रस, रक्त और सम्पूर्ण शरीर को उष्ण रखने वाली अग्नियाँ ।

विमर्श–संसार में अग्नि बड़ा महत्वपूर्ण मुख्य देवता है । अग्नि का गुण दार्शनिक दृष्टि से रूप है । जहाँ-जहाँ रूप होगा वहाँ-वहाँ अग्नि अवश्य होगी । अग्नि इस संसार का मुख्य देव है । यह उर्ध्वगामी है, अग्नि सदा सर्वदा ऊपर उठता है । जैसे जल अधोगामी है, जल की गति सदा नीचे की ओर रहती है, किन्तु अग्नि सदा ऊर्ध्वगामी है । मनुष्य के जीवन में भी सारी उन्नति का श्रेय जीवन में उपस्थित अनेक प्रकार की अग्नियों को जाता है । अग्नि में तेजस्विता है । संसार में जहां भी तेज है वहाँ अग्नि उपस्थित है । अग्नि प्रकाश देता है । प्रकाश ज्ञान का प्रतीक है । अग्नि जहाँ रहता है वहाँ मलिनता या सड़ाँध नहीं रहती । अग्नि दोषों को, सड़े पदार्थों को शुद्ध करके निर्दोष, निर्मल बना देती है । अग्नि का उद्गम् सूर्य है ।

सूर्य की किरणों से अग्नि का तेज बढ़ता है और जीवधारियों को प्राण मिलता है । इस प्रकार मनुष्य में उन्नति, विकास आदि जब भी मिलेगा वह अग्नि देव की ही कृपा का फल होगा ।

प्रस्तुत मंत्र में मोटे तौर पर यह कहा गया है कि संसार में जितने भी पदार्थ, भूत मात्र हैं, सब में अग्नि के तेज से ही पदार्थों के गुण प्रकट होते है । भूमि के गर्भ में अग्नि है । गहरा गड्ढा खोदकर रखने पर उसमें घास, फूस, काठ आदि सब कुछ धरती की गर्मी से अपना रूप बंदल देते है । हजारों वर्षं में धरती के गर्भ में वृक्षं आदि पदार्थों से अनेक प्रकार के खनिज द्रव्य बन जाते हैं । सोना, चाँदी, ताँबा आदि अग्नि के कारण ही बनते हैं । हीरा, पन्ना आदि अनेक प्रकार के पत्थरों का निर्माण भी भू-गर्भ में उपस्थित अग्नि का ही काम है । इसी प्रकार कोयला, तेल आदि धरती की गर्मी के कारण ही बनते हैं । ज्वालामुखी तो है ही अग्नि । समुद्र में उबलते हुए अग्नि कुण्ड अग्नि की ही महिमा हैं । पहाड़ों में कई जगह गर्म पानी के सोते हैं। ये सोते अग्नि की कृपा से इतनी औषधियों के रस को लेकर निकलते हैं कि कई प्रकार के चर्म रोग उनसे ठीक हो जाते हैं। मंत्र कहता है कि अग्नि भूमि में समाया हुआ है ।

वनस्पतियों में अग्नि ही के कारण विभिन्न प्रकार के औषधीय गुण धरती से आ जाते हैं । एक ही जगह पर ब्राह्मी भी है, तुलसी भी है, अश्वगन्धा भी है, हजारों-लाखों प्रकार की औधषियों में लाखों प्रकार के गुण अग्नि की ही कृपा से मनुष्य को सुलभ होते हैं । संसार में अभी तक एक भी वनस्पति ऐसी नहीं है जिसमें कोई न कोई औषधीय गुण न हो । भिन्न-भिन्न औषधियों में भिन्न-भिन्न प्रकार के गुण अग्नि के कारण ही पृथ्वी से निकलकर समा जाते हैं ।

जल अग्नि को बुझाता है और अग्नि जल को भाप बनाकर सुखा देती है किन्तु जल की उत्पत्ति अग्नि से बतायी गयी है —

'अग्नेरापः' । जल में अग्नि समायी रहती है । जल विद्युत् के रूप में अग्नि को धारण कर रखता है । जलीय विद्युत् (Hydral Electricity) जल से ही उत्पन्न की जाती है ।

मनुष्य, गाय, घोड़े आदि जितने पशु प्राणी हैं उनका भोजन, जठराग्नि से पचता है । प्राणियों के शरीर में अग्नि ही अन्न को पचाकर रस, रक्त, मांस, हड्डी, वीर्य, ओज, तेज, मज्जा (Marrow) सब कुछ अग्नि के कारण ही होता है ।

इस मंत्र में अंग्नि की महिमा संसार के सभी पदार्थों और प्राणियों में उपस्थित बतायी गयी है ।

*

मंत्र–२०

'अग्निर्दिव आतपत्यग्नेर्देवस्योन्तक्षिम्
अग्निं मर्तास इन्धते हव्यवाहं धृतप्रियम् ।।'

पदार्थः–

अग्निः=अग्नि । दिवः=द्युलोक से । आतपति=चारों ओर से उद्दीप्त होती है । अग्नेः=विद्युत रूपी अग्नि का । देवस्य=प्रकाशमय देव का । उरु=महान्, विशाल । अन्तरिक्षम्=अन्तरिक्ष लोक, पृथ्वी और द्यौलोक के मध्य का भाग । अग्निम्=अग्नि को । मर्तासः=मरण धर्मा मनुष्य, प्राणी । इन्धते=प्रदीप्त करते हैं । हव्यवाहं=हव्य, हवनीय, आहुति देने योग्य पदार्थों को वहन करने वाला । धृतप्रियम्=घृत के द्वारा प्रसन्न होने वाला, घृत से प्रदीप्त, उद्दीप्त होने वाला ।

विमर्श–इस मंत्र में अग्नि देव की महिमा को सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड में उपस्थित बताया गया है । हम पृथिवी पर रहने वाले प्राणी हैं । पृथिवीलोक की सीमा कुछ सौ या हजार फीट की ऊँचाई तक है, जहाँ तक पृथिवी की आकर्षण शक्ति काम करती है । उससे ऊपर जहाँ तक पृथिवी की आकर्षण शक्ति है वहाँ तक ब्रह्माण्ड का पृथिवी मण्डल है । पृथिवी मण्डल से लेकर सूर्य मण्डल तक अन्तरिक्ष लोक है । यह पृथिवी मण्डल और सौर मण्डल के मध्य का भाग है । इसे ही अन्तरिक्ष कहते हैं । यह अन्तरिक्ष मण्डल पृथिवी लोक से बहुत अधिक विशाल विस्तृत है । इसीलिए मंत्र में उसे 'उरु अन्तरिक्षम्' कहा गया है । अन्तरिक्ष से ऊपर द्युलोक है, जहाँ सूर्यलोक जैसे अनन्त लोक लोकान्तर विद्यमान हैं । कहा गया है कि अनन्त, अपार ब्रह्म का एक चौथाई, एक पाद यह भौतिक लोक है और तीन चौथाई

द्यौलोक में वर्तमान हैं —

'पादोऽस्य विश्वाभूतानि, त्रिपादस्यामृतं दिवि'

द्यौलोक में अग्नि का विशालतम पुंज सूर्य के रूप में तप रहा है, उद्दीप्त हो रहा है । यही सूर्य रूपी अग्नि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को उष्णता प्रदान करने वाली अग्नि का आदि स्रोत है । यही द्यौलोक का अग्नि अग्निपुंज सूर्य भौतिक अग्नि के माध्यम से सम्पूर्ण पृथिवी लोक को उष्णता देता है, प्राण वायु प्रदान करता है । इसी से सम्पूर्ण पृथिवी लोक में जीवनी शक्ति सुरक्षित रहती है । यही सूर्य देव की अग्नि विद्युत रूप लेकर विशाल अन्तरिक्ष लोक में उद्दीप्त होती है ।

मानव प्राणी मर्त्यलोक में अग्नि को प्रदीप्त करते हैं और उसी में आहुति देकर इस संसार चक्र को चलाने में अपना योगदान करते हैं । अग्नि को घृत बहुत प्रिय है । उसी से अग्नि प्रज्जवलित होकर उद्दीप्त होता है, उसी में मनुष्य प्राणी होम करके संसार चक्र को चलाने में सहयोग करते हैं । भगवान् श्री कृष्ण गीता में कहते हैं कि सारे प्राणी अन्न से जीते हैं और अन्न बादलों की वृष्टि से सम्भव होता है । बादलों का निर्माण यज्ञ की आहुतियाँ जलने से होता है और यज्ञ का विधि-विधान परमेश्वर ने वेदों में बताया है । इसलिए मनुष्य का कर्त्तव्य है कि इस प्रभु परमेश्वर द्वारा बनाये हुए संसार के चक्र को सहयोग करता रहे । आगे भगवान् कृष्ण यहाँ तक कह देते हैं कि जो इस ब्रह्मचक्र में सहयोग नहीं करते इनका जीवन व्यर्थ है । प्रस्तुत मंत्र में यह कहा गया है कि मनुष्य लोक घृत से प्रीणित होने वाले इस अग्नि में आहुतियाँ देते हैं और यह अग्नि हव्यवाहन है, यह आहुतियों को जलाकर उनके पालक, पोषक गुणों को मनुष्य, अन्न और औषधियों तक पहुँचाता है । इसी से प्राणियों का जीवन चलता है ।

*

मंत्र–२१

'अग्निवासाः पृथिव्यसितज्ञस्त्वषीमन्त संशितं मा कृणोतु ।'

पदार्थः–

अग्निवासाः=अग्नि रूपी वस्त्र तथा अग्निरूपी तेजस्वी आवरण धारण किये हुए । अग्निवासा का एक और अर्थ बनता है कि अग्नि रूपी तेजस्वी तत्व पृथिवी के बाहर और भीतर बसता है । पृथिवी =यह भूमिमाता । असितज्ञः=(असित=बन्धन रहित, स्वतंत्र, षूञबन्धने धातु से) बन्धन रहित स्वतंत्र, सर्वतंत्र स्वतंत्र परमेश्वर का ज्ञान देने वाली । त्विषीमन्त =तेजस्वी दीप्तिमान् । संशितं=तेजस्वी । मा=मुझको, मातृभूमि के निवासियों को । कृणोत=कर दे, बना दे ।

विमर्श–इस मंत्र में राष्ट्र के निवासी अपनी मातृभूमि से अनुरोध कर रहे हैं कि हे मातृभूमि तुम अग्निवासा हो । तुम्हारे भीतर अग्नि का तेज विराजता है और तुम्हारे बाहर भी तेजस्वी सूर्य का तेज अग्नि की तरह विराजमान है । इस प्रकार तुम्हारे भीतर-बाहर तेजस्विता, वीरता विराज रही है । हे मातृभूमि हमें भी बाहर और भीतर से चरित्र, ज्ञान और शूरता, वीरता का तेज धारण कराओ । हे मातृभूमि तू असितज्ञ हो । असित है बन्धन रहित परम प्रभु परमेश्वर और तू उसका ज्ञान कराती हो । तुमको देखकर, तुम्हारी विशेषताओं को देखकर, तुम्हारे ऊपर उत्पन्न होने वाला पत्र, पुष्प, फल, मूल, अन्न आदि सभी कुछ परमेश्वर की महिमा का ज्ञान करा रहा है । सच ही कहा है –

'पर्णः पर्णः सूचकस्तद्विधातुः,
पुष्पे पुष्पे विद्यते धातृसत्ता ।'

संसार का हर एक पत्ता परमेश्वर की कृपा बखान कर रहा है, प्रत्येक फूल परम प्रभु की कृपा की सूचना दे रहा है ।

मातृभूमि के निवासी मातृभूमि से प्रार्थना कर रहे हैं कि हे मातृभूमि मुझे भी अग्नि जैसा तेजस्वी बना दो । हममें भी ज्ञान, चरित्र, शूरता, वीरता का तेज भर दो ।

एक विशेष भाव

यहाँ तीन मंत्रों में, मंत्र संख्या १९, २०, २१ में अग्नि और तेजस्विता का विशेष रूप से वर्णन हुआ है । किसी भी राष्ट्र में अग्नि रूपी ज्ञान, तेजस्विता, शूरता, वीरता अवश्य होनी चाहिए । साथ ही विद्युत, विज्ञान, युद्ध - कौशल, स्वतंत्रता की रक्षा का तेज अवश्य होना चाहिए । यहाँ यह भी लक्ष्य करने के योग्य है कि मातृभूमि के उत्पाद अन्न, मूल, फल, फूल आदि बलशाली गुणवत्ता से भरपूर हों। मातृभूमि के युद्ध उपकरण, हथियार आदि भी तेजस्वी और गुणवत्ता में बढ़-चढ़कर हों ।

*

मंत्र– २ २

'भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरंकृतम् ।
भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः ।
सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु ।।'

पदार्थः– भूम्यां=भूमि के ऊपर । देवेभ्यः=देवंताओं के लिए । अग्नि, वायु,जल, पृथिवी, आकाश आदि पंच भूत रूपी देवताओं की शुद्धि और सम्पन्नता के लिए । ददति=देते हैं । यज्ञम्=यज्ञ को । हव्यम्=हव्य, हवनीय, हवन के लिए आहुति देने के द्रव्य । अरंकृतम् =अलंकृतम्, अच्छी प्रकार सुसंस्कृत बनायी हुई (हवन सामग्री) को । भूम्यां=भूमि पर । मनुष्याः=मनुष्य लोग । जीवन्ति=जीवन धारण करते हैं, जीते हैं । स्वधया (पितृभ्यः स्वधा) वृद्ध, ज्ञान वृद्ध, वयो वृद्ध, माता-पिता, बुजुर्ग नागरिकों के लिए दिये जाने वाले अन्न वस्त्र आदि के द्वारा । अन्नेन=अन्न के द्वारा, जीवन निर्वाह के साधन के द्वारा । मर्त्याः=मरण धर्मा, मरणशील । सा=वह (मातृभूमि) । नो=नः, हमारे लिए । भूमिः=भूमि । प्राणम्=प्राण शक्ति, जीवनी शक्ति । आयुः = दीर्घ जीवन । दधातु=धारण करे। जरदष्टिं=जरावस्था पर्यन्त दीर्घ जीवन । मा=हमको, राष्ट्र के नागरिकों को । पृथिवी =मातृभूमि । कृणोतु =करे ।

विमर्श–इस मंत्र में यह संदेश दिया गया है कि लोग सदा यज्ञशील बने रहें । यज्ञ में तीव्र तेजस्वी अग्नि में हवनीय घृत, अन्न, औषधि, रोग निवारक पदार्थों को सुसज्जित करके श्रद्धा भक्ति से सुसंस्कृत करके आहुति देते हैं । ये आहुति अन्न, औषधि, घृत, मेवे मिटान्न सभी हव्य कहलाते हैं । यही हवनीय, आहुति देने योग्य द्रव्य है।

यज्ञ में तीन भावनायें बड़ी महत्वपूर्ण हैं —

(१) देव पूजा:—जो व्यक्ति अच्छे गुणों से युक्त हैं, पूजनीय है, देश समाज के लिए समर्पित हैं, उनका पूजन सत्कार होना चाहिए। जो देश जाति समाज के लिए त्याग करते हैं, उनका सम्मान होना चाहिए। इसी का अर्थ यह है कि जो स्वार्थी, चोर, बेईमान, धोखेबाज हैं उन्हें अवश्य ही दण्ड मिलना चाहिए। भाव यह हुआ कि पूज्यों का, त्यागियों का पूजन, सत्कार, देश की उन्नति में सहायक होता है।

(२) संगतिकरण :—राष्ट्र में समाज में कई वर्ग होते हैं, इन्हें कई प्रकार से विविध वर्गों में विभाजित किया जा सकता है, जैसे बुद्धिजीवी लोग, सैनिक, पुलिस, न्याय आदि कार्यों में लगे नागरिक, तीसरे कृषि, उद्योग, व्यवसाय में लगे, उत्पादन और वितरण करने वाले लोग और कार्यों में शारीरिक रूप से अपने परिश्रम के द्वारा सहयोग करने वाले लोग। आज की भाषा में इन्हें चतुर्थ श्रेणी का कर्मचारी कहा जाता है।

वेद का संदेश यह है कि इन विभिन्न वर्गों में सहयोग, समन्वय, सामंजस्य हो, इनमें आपस में संघर्ष न हो। राष्ट्र की उन्नति और रक्षा के लिए विभिन्न वर्गों में वर्ग-समन्वय, सामंजस्य हो। वर्ग-संघर्ष (Class Struggle) वैदिक सिद्धान्त नहीं है।

इन सभी वर्गों को अपने परिश्रम, सहयोग के बदले में अलंकृत, सुसंस्कृत उपहार (आज की भाषा में पारिश्रमिक) मिलना चाहिए। यह पारिश्रमिक बड़े सम्मान के साथ मिलना चाहिए। कोई वर्ग किसी वर्ग का शोषण न करे और न कोई वर्ग राष्ट्रहित के साथ असहयोग करे। मंत्र में नागरिकों के लिए स्वधा का प्रावधान किया गया है। स्वधा का एक विशेष अर्थ है जो वृद्ध जीवन भर राष्ट्र की सेवा में रहे हैं उन्हें वृद्धावस्था में जीवन के सुखमय निर्वाह के लिए सहयोग साधन की

व्यवस्था होती रहे । यह केवल बुढ़ापे की पेन्शन नहीं है । यह वृद्धों के लिए सम्मान पूर्वक जीवन निर्वाह की व्यवस्था का प्रावधान है ।

मंत्र में एक विशेष बात यह भी कही गयी है कि मातृभूमि में सामाजिक और प्रशासनिक व्यवस्था ऐसी सुन्दर होनी चाहिए कि लोग प्राणवान, बलवान, तेजस्वी और दीर्घजीवी हों । यह सामाजिक दृष्टि से और प्रशासनिक दृष्टि से कल्याण राज्य की व्यवस्था की अनुशंसा है । आज की भाषा में वेलफेयर स्टेट और वेलफेयर सोसांइटी, कल्याण राज्य और समाज की व्यवस्था का प्रावधान है । जीवन निर्वाह के साधन, शिक्षा, रोजगारी (Emplyment), स्वास्थ्य आदि सभी सामाजिक राष्ट्रीय व्यवस्था के अंग होने चाहिए । ये सब सामाजिक जीवन में हव्य का रूप हैं । तभी दीर्घ जीवन और सुखमय समाज का निर्माण हो सकेगा । यह सामाजिक और प्रशासनिक यज्ञ बनेगा ।

*

मंत्र–२३

'यस्ते गन्धः पृथिवि संबभूव यं बिभ्रत्योषधयो यमापः।
यं गन्धर्वा अप्सरसश्च भेजिरे
तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ।।'

पदार्थः–

यः = जो (गन्ध) । ते=तुम्हारा (पृथिवी का) । गन्धः= गन्ध । पृथिवि=हे भूमि माता । संबभूव=अच्छी प्रकार विशेष गुणों से उत्पन्न हैं। यम्=जिस (गन्ध को) । ओषधयः=ओषधियां, वनस्पतियां। बिभ्रति=धारण करती हैं । यम्=जिस (गन्ध) । आपः= जल। यम्=(जिस गन्ध को) । गन्धर्वाः=गन्धर्व, युवक, ज्ञानी वक्ता (गां धारयति वाणी को धारण करने वाले), ज्ञानी पुरुष । अप्सरसः=किरणें, ज्ञानी स्त्रियां, विद्युत् । भेजिरे=सेवन करते हैं । तेन=उस (गन्ध के द्वारा) । मा (माम्)=हमको । सुरभिं=सुन्दर गन्धवाला । कृणु=करो या बनाओ । मा=नहीं (निषेध) । नः=हमसे । द्विक्षत=द्वेष करे । कश्चन=कोई भी ।

विमर्श :- प्रस्तुत मंत्र में पृथिवी माता के विशेष गुण गन्ध की विशेषताओं का गुणगान किया गया है । प्रकृति के मूलरूप से पांच उपादान हैं । वायु का गुण स्पर्श है, अग्नि का गुण उष्णता, तेज है, जल का गुण रस है और आकाश का गुण शब्द है, पृथिवी का गुण गन्ध है । इस प्रकार गन्ध पृथिवी का मूल गुण है ।

गन्ध भी कोई सुन्दर, सुखद, मस्तिष्क तंतुओं को तेज देनेवाला है । इसे हम सुगन्ध कहते हैं । चन्दन, कमल, गुलाब जैसे सैकड़ों हजारों गन्ध मन और मस्तिष्क को सात्विकता प्रदान करते हैं, मन मस्तिष्क को तेजस्वी बनाते हैं, तामसी गन्ध में दुर्गन्ध मन मस्तिष्क की प्रतिकूलता होती है । सड़ी वस्तुएं, तामसी मलमूत्र बहुत दुर्गन्धकारी होते हैं । जहां सात्विकता होगी वहां सुगन्ध होगी । सात्विक उपयोगी

औषधियों में वनस्पतियों में अच्छी लगने वाली गन्ध आती है। जायफल, जावित्री, दालचीनी, जीरा, धनियां आदि सात्विक वनस्पतियां हैं। इसी प्रकार आम, सेव, केला, तरबूजा आदि में सात्विकता होती हैं। जौ, चावल, मूंग, आदि अन्नों में भी सात्विक सुगन्ध होती है, किन्तु यही फल, अन्न, औषधियाँ गन्दी, मलिन मलमूत्रयुक्त जगह में पैदा होती हैं तो ऐसी तामसी हो जाती हैं कि मनुष्य के मन मस्तिष्क रस ओज, तेज वीर्य, रज सबको तामसी बना देते हैं।

प्रस्तुत मंत्र में भूमि माता से यह आग्रह किया गया है कि हे भूमिमाता! आपके अन्दर जो औषधियां सात्विक गन्ध वाली उत्पन्न होती हैं, जो सात्विक जल पाया जाता है, उन सबको हमारे लिए सुगन्धित बनाईये। गन्धर्व और अप्सराएँ जिस गन्ध को धारण करती हैं, उन्हें हमारे लिए प्रदान करिये, हमको उसी गन्ध से सुगन्धित बनाईये। यहां गन्धर्व वाणी को धारण करने वाले ज्ञानी पुरुष हो सकते हैं। अप्सरायें सुन्दर, सुशील स्त्रियां भी होती है (पद्मनी, पद्मगन्धा स्यात्) यह सात्विक गुण सम्पन्न स्त्री पुरुष के शरीर से सुगन्ध आती है। म्लेच्छ का शरीर पसीना, मलमूत्र आदि दुर्गन्धित होता है। प्रस्तुत मंत्र में मातृभूमि से आग्रह पूर्वक निवेदन कर रहे हैं कि हे भूमिमाता! हमारे लिए अन्न, जल, औषधियाँ, वनस्पतियां आपसे सुगन्ध धारण करें जिससे हमारे पुरुष ज्ञानी हों, स्त्रियां सुशील, क्रियाशील और यशस्वी हों, हमारी किरणें और जल सात्विक हों, हमारा जीवन सात्विक सुगन्धमय हो, जिससे कि कोई भी संसार का प्राणी हमसे द्वेष न करे।

जहां सात्विकता होती है, सुगन्ध क्रियाशीलता, सुमनस्कता होती है, ऐसा व्यक्ति और राष्ट्र श्रद्धा और मित्रता का पात्र होता है उससे कोई द्वेष नहीं करता है। हमारा जीवन सात्विक यशस्वी धार्मिक एवं सुगन्धित हो। ऐसे सुन्दर राष्ट्र का कोई भला राष्ट्र न शत्रु होगा, न ऐसे राष्ट्र से अच्छा राष्ट्र द्वेष करेगा।

*

मंत्र– २४

'यस्ते गन्धः पुष्करमाविवेश यं संजभ्रुः सूर्याया विवाहे ।
अमर्त्याः पृथिवि गन्धमग्रे तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ।।'

पदार्थ :-

यहः=जो (गन्धं) । ते=तुम्हारा (पृथिवी का) । गन्धः=गन्ध, सुगन्ध । पुष्करम्=कमल (सुगन्धित पुष्प, वनस्पतियां आदि) । आविवेश= प्रविष्ट हुआ है । यम्=जिसको (गन्ध को) । संजभ्रुः=ग्रहण करते हैं । सूर्यायाः=सूर्या के, उषाकाल के । विवाहे=प्राप्त होने पर (वह प्रापणे) । सूर्यायाः विवाहे=उषाकाल के प्राप्त होने पर । अमर्त्याः=अमर धर्मा वायु जल आदि । पृथिवि=भूमिमाता । गन्धम्=गन्ध को । अग्रे=आगे । तेन=उसके द्वारा । मा=हमको । सुरभिं=सुगन्धित । कृणु=करो । मा= नहीं । नः=हमको । द्विक्षत=द्वेष करे । कश्चन=कोई भी

विमर्श :-

प्रस्तुत मंत्र में यह कहा गया है कि हमारे शरीर, जीवन चरित्र आदि में सुगन्ध का संचार हो । मनुष्य का शरीर कई कोषों से (पर्तली म्यान (shieth) ढका हुआ है । सबसे बाहर अन्नमय कोष है जिसमें मुख्य रूप से पृथिवी की प्रधानता है । अन्नमय कोष के भीतर प्राणमय कोष है जिसमें प्राण तत्व (जीवनी शक्ति) की प्रधानता है । प्राण हवा की सवारी पर चढ़कर सारे शरीर में, यहां तक रोमावलियों तक पहुंचाता है, सभी मनुष्यों को भावावेश में रोमांच हो जाता है । इस प्रकार प्राणमय कोष में वायु तत्त्व की प्रधानता है । प्राणमय कोष का प्रभाव अन्नमय कोष पर भी पड़ता है । प्राण सात्विक राजस और तामस होते हैं । जैसा प्राण रहेगा उसी प्रकार अन्नमय कोष की

सात्विकता आदि में प्रभाव पड़ेगा। प्राणमय कोष के भीतर मनोमय कोष है और मनोमय कोष के भीतर विज्ञानमय कोष है और विज्ञानमय कोष के भीतर भी आनन्दमय कोष है।

सुगन्ध रहने पर प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय कोषों में प्रफुल्लता और सक्रियता का भाव रहता है इसलिए मनुष्य का स्वभाव है कि वह सुगन्ध को पसन्द करता है और दुर्गन्ध से घृणा करता है।

प्रस्तुत मंत्र में राष्ट्र के नागरिक मातृभूमि से अनुरोध करते हैं कि हे भूमिमाता ! आपकी जो गन्ध कमल में प्रवेश करती है, आपकी जिस गन्ध को उषा काल में वायु आदि अमरणशील प्राप्त करते हैं, वही सुगन्ध हमको भी प्राप्त कराइये। वस्तुतः कमल यहां सुगन्धित पुष्पों, पदर्थों का प्रतीक है। गन्ध का मूल स्रोत तो पृविथी ही है (गन्धवती पृथिवी)। इसी पृथिवी के गन्ध से सारे पुष्प, वनस्पति आदि सुगन्ध पाते हैं। कमल हो या कुमुदनी, गुलाब हो या बेला, चमेली, सभी पुष्पों को गन्ध पृथिवी से मिलती है। कृषि में सरसों या दूसरे अन्य गेहूँ, जौ, अरहर दाल सबके तनों और फूलों से एक प्रकार की स्वास्थ्यवर्धक सुगन्ध निकलती है। उषा काल के पुलकित, पवित्र, स्फूर्तिदायी पवन में वह सुगन्ध समा जाती है और उषाकाल के प्राणदायी वातावरण में यह सुगन्ध प्राप्त होती है। उषाकाल के समय कल-कारखाने, पेट्रोल, डीजल, तारकोल, कोयला आदि की दुर्गन्धभरी हवा नहीं रहती। उस समय सुगन्धित पवन और प्राणप्रद वायु को ही हम प्राप्त करते हैं और उसीसे हम सुगन्ध ग्रहण करते हैं। राष्ट्र का नागरिक इसीलिए भूमि माता से प्रार्थना करता है कि मुझे उसी सुरभित सुगन्ध से सुगन्धित कीजिए।

इस प्रार्थना का गतार्थ भाव यह है कि हे भूमिमाता! हमारे जीवन को इसी प्रकार के सुगन्धित, ऐश्वर्यशाली कार्यों से संयुक्त कर

दीजिए। हमारे जीवन में किसी प्रकार की तामसिकता की दुर्गन्ध न आने पावे।

जब हमारे जीवन में, चिन्तन, चरित्र, कार्यों में सात्विकता होगी तो हमसे कोई ईर्ष्या, द्वेष नहीं करेगा। मनुष्य जब यशस्वा चरित्र का होता है तो उसके सुरभित चरित्र के कारण संसार उससे प्यार करता है और कोई भी ऐसे यशस्वी व्यक्ति से द्वेष नहीं करता। इसीलिए मातृभूमि से प्रार्थना है– **"न मा द्विक्षत कश्चन"** अर्थात् कोई मुझसे द्वेष न करे।

*

मंत्र– २५

'यस्ते गन्धः पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रुचिः
यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषूत हस्तिषु ।
कन्यायां वर्चो यद्भूमे तेनास्माँ अपि सं सृज मा नो द्विक्षत कश्चन ।।'

पदार्थः–

यहः=जो (गन्ध) । ते=तुम्हारा (पृथिवी का) । गन्धः=गन्ध, सुगन्ध । पुरुषेषु=पुरुषों में । स्त्रीषु=स्त्रियों में । पुंसु=पवित्र जीवन वालों में (पु=पवित्र) । भगः=ऐश्वर्य । रुचिः=दीप्ति, तेज=(रुचिर् दीप्तौ) । यहः=जो । अश्वेषु=घोड़ों में । वीरेषु=वीरों में । मृगेषु=हरिणों में । उत= और । हस्तिषु=हाथियों में । कन्यायाम्=कुमारी कन्या , युवती में । वर्चः=वर्चस, तेज । यत्=जो । भूमे=हे भूमि माता । तेन=उसके द्वारा उस गन्ध के द्वारा । अस्मान्=हमलोगों को । अपि=भी । संसृज=निर्माण करो, बनाओ । मा=नहीं । नः=हमलोगों से । द्विक्षत=द्वेष करे । कश्चन=कोई भी

विमर्श–यह २५वाँ मंत्र भी २४ वें मंत्र की भाव धारा को आगे बढ़ा रहा है । मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षी, हाथी-घोड़े, सबमें एक प्रकार की मस्ती भरी सुगन्ध होती है । जैसे पुष्पों में सुगन्ध है वैसे ही जहाँ भी पृथिवी का बना हुआ शरीर होगा वहाँ सर्वत्र एक प्रकार की गन्ध पायी जाती है । हमने २३वें और २४ वें मंत्रों में कुछ विस्तार से अन्नमय कोष का वर्णन किया है । इस अन्नमय कोष में पृथिवी तत्व की प्रधानता है। वीर, बहादुर, पौरुष, पुरुषार्थ सम्पन्न पुरुषों के शरीर से एक प्रकार की गन्ध आती है । स्त्रियों में भी और पवित्र, चरित्र सन्त पुरुषों में भी एक प्रकार का ऐश्वर्य दीप्ति और वर्चस प्राप्त होता है । यहां भग शब्द का प्रयोग हुआ है । भग का अर्थ ऐश्वर्य होता है। सामान्य रूप में ऐश्वर्य की गणना ६ प्रकार की की जाती है–

'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ।।'

दीप्ति और वर्चस में तेजस्विता है । घोड़े, हाथी,मृग आदि पशुओं में भी एक प्रकार की गन्ध होती है । जिन हाथियों के गण्डस्थल में मद फूट निकलता है उसकी सुगन्ध अलग ही है । घोड़े और मृग में एक प्रकार का तेज देखा जाता है । भोली-भाली अविवाहित कुमारी कन्या के भोलेपन में और कौमार्य युक्त यौवन की देहली पर खड़ी कन्या में एक तेज, रुचिरता, चरित्र में ऐश्वर्य दिखाई पड़ता है । हे भूमिमाता वह सब हमें प्रदान कीजिए । मंत्र में यही प्रार्थना है कि हे भूमिमाता हमारी संसृष्टि, हमारा निर्माण, हमारा जीवन ऐसा बना दो, हमारे जीवन, आचरण, व्यवहार से ऐसी सुगन्धि, ऐसा तेज, ऐसा वर्चस संसार को मिले कि कोई द्वेष न करे । जब हमारे जीवन में सबके लिए प्यार होगा तो मुझसे द्वेष करने वाला भी कोई न होगा । हे माता हमें ऐसा बना दो कि हमारा सभी से प्रेम हो और सबका हमसे प्रेम हो, न हम किसी से द्वेष करें और न हमसे कोई द्वेष करे ।

विशेष विचार :—यहां २३, २४ और २५ तीनों मंत्रों का एक त्रिक पाया जाता है । तीनों मंत्रों में एक तो गन्ध का वर्णन है और दूसरे भूमि माता से यह प्रार्थना की गयी है कि हमसे कोई द्वेष न करे।

२३ वें मन्त्र में पृथिवी औषधि, यज्ञ, वेद-वाणी को धारण करने वाले विद्वानों का वर्णन है । २४ वें मंत्र में फूल, उषा, वायु आदि के सुगन्ध का वर्णन है और २५ वें मंत्र में स्त्री-पुरुष, ग्राम्य पशु और अरण्य पशु के गंध, तेज, दीप्ति, ऐश्वर्य का वर्णन है ।

तीनों मंत्रों में एक टेक लगी है—'न मा द्विक्षत कश्चन'—कोई हमसे द्वेष न करे । यह इन तीनों मंत्र का एक त्रिक बनाता है ।

*

मंत्र–२६

'शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः सन्धृता धृता।
तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः।'

पदार्थः–

शिला=चट्टान , भूमिः=भूमि (मातृभूमि) । अश्मा=पत्थर । पांसुः=धूलि। सा=वह । भूमिः=भूमि । सन्धृता=अच्छी तरह धारण की गई । धृता=धारण की हुई । तस्यै=उसके लिए (भूमि के लिए) । हिरण्यवक्षसे=हिरण्य को, स्वर्ण को, तेजस्वी पदार्थों को वक्षस्थल में धारण किये हुए । पृथिव्यै=पृथिवी के लिए । अकरम्=किया, करते हैं। नमः=नमस्कार, आदर, सम्मान ।

विमर्श–प्रस्तुत मंत्र में मातृभूमि की एक भावनात्मक मानसिक श्रद्धामयी संकल्पना प्रस्तुत की गयी है । भूमि का वास्तव में भौतिक स्वरूप क्या है ? कहीं चट्टान है, कहीं पत्थर है, कहीं धूल है, कहीं नदी, मैदान, तालाब वन, उपवन, यही सब भौतिक वस्तुएँ पृथिवी का भौतिक स्वरूप हैं । जब इनके साथ मातृत्व की भावनात्मक मानसिक संकल्पना जुड़ जाती है तो यही मातृभूमि बन जाती है । जब हमारे मन में एक आत्मीयता का कृतज्ञता भरा भाव उदय होता है कि यही मिट्टी हमारे शरीर को बनाती है । इसी मिट्टी में हमारा शरीर मिल जायेगा। इसी की धूल में लोट-पोट कर हम बड़े हुए हैं । यहीं का अमृत के सदृश जल पीकर हम जीवित रहते हैं । यहीं की हवा हमें प्राण देती है । इस धरती की वनस्पतियाँ अन्न, मूल, कन्द हमारे जीवन को भोजन देते हैं, तो हमारे मन में आत्मीयता से भरपूर एक मानसिक आत्मीय स्नेहपूर्ण मातृत्व की भावना उदय हो जाती है । यही

कृतज्ञतामयी आत्मीय भावना मातृभूमि के भाव को जन्म देती है ।

अन्ततः हमारी जननी, माता का भौतिक रूप भी क्या है ? पंच भौतिक तत्त्वों का हाड़-मांस, रुधिर आदि का भौतिक संघात ही तो है। यही तो सभी प्राणियों का रूप है । किन्तु जब मन में यह भाव उठता है कि इसी मां के शरीर से हमारा शरीर निर्मित हुआ है, इसी का दूध पीकर हम बड़े हुए हैं, इसी के आंचल में लोट-पोट कर हम खड़े हुए हैं । इसी माँ ने अंगुली पकड़कर हमें खड़ा किया, चलना सिखाया, खिला-पिलाकर हमें संसार के कर्म क्षेत्र के योग्य बनाया, तो हमारे मन में एक आदर, सम्मान, प्रेम, कृतज्ञता की भावना के साथ आत्मीयता के साथ भाव उठता है और हम माँ को आदर, प्रणाम, नमस्कार का पात्र समझते हैं ।

यही बात मातृभूमि के साथ भी लागू होती है । यही बूंद, यही चट्टान, यही पत्थर, यही घूल हमारे लिए कहीं कृषि योग्य भूमि के रूप में अन्न, फल उत्पन्न करते हैं । जंगलों से अनेक प्रकार के उत्पाद हमारा पालन-पोषण करते हैं । इसी भूमि के नदी, सरोवर हमें जल देते हैं । यहीं की शिला, यहीं का पत्थर, यहीं की धूल हमारे लिए कहीं घर बनाती है, कहीं आवागमन परिवहन के लिए सड़क बनाती है । यहीं हवा, यहीं का प्रकाश, हमें प्राण , हमें तेज और ओज देता है, शरीर, मन, मस्तिष्क का बल देता है ।

यह हमारी माता अपने वक्षस्थल में, अपनी छाती में अनेक हिरण्यमय तेजस्वी, उपयोगी, बहुमूल्य पदार्थों को छोह से छिपाये हुए है । यह रत्नगर्भा है । इसमें हीरे जवाहरात भरे पड़े हैं । यह वसुधा है, कहीं पानी है, कहीं कोयला है, कहीं तेल है और भी न जाने कितने मूल्यवान पदार्थ हैं जिनसे हमारा शरीर, हमारा समाज, हमारी सभ्यता संस्कृति का निर्माण हुआ है । इसीलिए कहते हैं—

'हे मातृभूमि ! वसुधा धरा, तेरे नाम यथार्थ हैं ।'

यह भूमि माता सन्धृता है, भली-भाँति धारण, पालन-पोषण की पात्र है। हम इसका पालन पोषण करें। हम इसका शोषण न करें। पुत्र माँ का पालन-पोषण करता है। माँ का शोषण नही करता। माता पूज्या है, वह पूजनीय है। धरती माता भी हमारे पालन पोषण की पात्र है। हम इसके मैदानों, नदी, पर्वत, सागर, जल, थल, भूतल और भूगर्भ का पोषण करें तो यह हमारे लिए हिरण्यवक्षा है। हमारे लिए बहुमूल्य पदार्थों का उपहार प्रदान करती है। ध्यान यही रहे कि न हम इसका शोषण करें न इसको भोग्या समझें। हम भूतल भूसम्पत्ति, भूगर्भ सबकी रक्षा करें। जैसे माँ का दूध पीते हैं, खून नहीं चूसते, उसी प्रकार हम भूमि माता का पालन पोषण करें। उसकी सुरक्षा संरक्षा करें। शोषण और दोहन न करें। पृथिवी हमको भी धारण करती है।

ऐसी वरदायनी पालन करने वाली भूमि माता को हम बारंबार नमस्कार करते हैं।

मातृभूमि का सामाजिक पक्ष :—जैसे एक मां के कई पुत्र होते हैं। शरीर विद्या, बुद्धि, कला, कौशल, उपार्जन, क्षमता, सबकी बराबर नहीं होती है। लेकिन सभी भाई पालन-पोषण के समान रूप से अधिकारी होते हैं। मातृभूमि के सभी निवासियों की योग्यता समान नहीं होती , कोई शरीर में बलवान है तो कोई व्यवसाय में, उद्योग में सुदक्ष है, कोई अच्छा चिकित्सक वैद्य है तो कोई बड़ा कुशल अभियंता, व्यवस्थापटु है, कोई विद्वान है, वैज्ञानिक है। बहुत प्रकार के लोग, बहुत प्रकार की योग्यताएँ होती हैं। किन्तु सभी मातृभूमि के पुत्र हैं, सभी राष्ट्र के नागरिक हैं। देश के सभी निवासियों को भोजन, वस्त्र, शिक्षा, चिकित्सा सबको सुयोग सुलभ होना चाहिए। यह मातृभूमि के सम्मान का, नमस्कार का गतार्थ है।

विश्व के संदर्भ में :—भूमि माता ने कहीं अपने को विभाजित नहीं

किया है, जैसे आकाश में कोई सीमा नहीं, न कोई देश राष्ट्र का बँटवारा है। उसी प्रकार सम्पूर्ण विश्व की भूमि एक है और भूमि माता ने कहीं कोई बंटवारा नहीं किया है और न एक देश के निवासियों को दूसरे देश के निवासियों का शत्रु बनाया है। इसी प्रकार भूमिमाता राष्ट्रों के पारस्परिक वैर-भाव को प्रश्रय नहीं देती है। कोई माता नहीं चाहती कि एक राष्ट्र; दूसरे राष्ट्र का शत्रु बने, आक्रमण करे, शोषण करे या विश्वयुद्ध का वातावरण निर्मित हो। सारा विश्व भूमिमाता का है और भूमि सबकी माता है, सबके लिए नमस्करणीय हैं।

*

मंत्र– २७

'यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा ।
पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि ।।'

पदार्थ :-

यस्याम्=जिसमें (जिस पृथ्वी में) वृक्षाः=वृक्ष । वानस्पत्याः=नाना प्रकार की वनस्पतियां । ध्रुवाः=स्थिर रूप से , ध्रुव, निश्चल । तिष्ठन्ति=स्थिर रहते हैं । विश्वहा=सदा सर्वदा । पृथिवीं=पृथिवी को । विश्वधायसं=सभी पदार्थों को धारण करने वाली को । धृताम्=परमेश्वर के नियमों में स्थिर, धारण की हुई । अच्छ=अच्छी तरह, भली-भांति । आवदामसि=हम गुणगान करते है, पृथिवी के सम्बन्ध में वर्णन करते हैं, विचार करते हैं ।

विमर्श :- मंत्र का मुख्य भाव मातृभूमि की वन्दना, गुणगान, अच्छी तरह वर्णन करने का है । हमारी मातृभूमि की शोभा प्राकृतिक छटा जहाँ गिरिकन्दरा चट्टान, चोट्टियां, नदी, सरोवर, पहाड़, सागर आदि में निहित रहती है, वहीं धरती माता की शोभा रंग-बिरंगी अनेक प्रकार की वनस्पतियों, वृक्षों, घास-फूस, फल-मूल, पुष्प हरियाली में निहित रहती है । हमारी मातृभूमि सदा सर्वदा इन लता, गुल्मों, वनस्पतियों आदि को धारण करके शस्यश्यामला, हरित-भरित सदा शोभायमान बनी रहती है । यह भूमिमाता समस्त पदार्थों को सदा ही अपने ऊपर, अपने वक्षस्थल पर धारण करके रहती है ।

ये वनस्पतियाँ एक ओर खाद्यान्न फल, मूल, कन्द आदि देकर हमारा पालन करती हैं । इन्हीं वनस्पतियों में नाना प्रकार की औषधियाँ छिपी रहती हैं जो हमको नीरोग बनाती है । हमारी धरती माता जहाँ

हमारे लिए प्रचुर पर्याप्त खाद्यान्न और औषधि आदि उत्पन्न करके हमारा पालन पोषण करती है, हमें रोगों से बचाती हैं, वहीं ये वनस्पतियां पृथिवी को वर्षा की मार से, चोट से धुलने से बचाती हैं। वनस्पतियाँ न हों तो वर्षा ऋतु में पानी की धारा उर्वरा मिट्टी को बहा ले जाये और हम उर्वरता हीन धरती पर कृषि कार्य न कर सकें।

धरती माता वनस्पतियों को धारण करके हमें काठ की सम्पदा प्रदान करती है जो हमारे लिए घर निर्माण, कल-कारखाने, फर्नीचर, जलावन आदि का साधन बन जाते हैं। इन्हीं वनस्पतियों से जलावन प्राप्त क़रके हम अग्नि और उर्जा प्राप्त करते हैं।

पृथिवी माता प्रभु की व्यवस्था में स्वयं ही धारण की हुई है। हम पृथिवी माता के स्वरूप का गुणगान करते हैं और उसके ऊपर की शोभा धरती तल की मनमोहनी छटा का गुणगान करते हैं। साथ ही भू-गर्भ की रहस्यमयी सम्पदा से लाभ उठाते हैं। हम अपनी मातृभूमि की प्रशंसा और वन्दना करने में आत्मीयतापूर्ण आनन्द का अनुभव करते हैं।

विशेष विचार

मंत्र २६ और २७ मातृभूमि के भूतल और भूगर्भ की विशेषताओं का वर्णन करते हैं। मातृभूमि के उपकारों का स्मरण कराकर हमें उसकी वन्दना करने की प्रेरणा करते हैं। हमारी मातृभूमि प्रशंसनीय शोभायुक्त पर्वतशिखरों, घाटियों, सागर, सरिता, जलाशयों से शोभायमान होकर प्रफुल्ल कुसुमित द्रुमदल शोभिनी. शस्यश्यामला मनमोहिनी है। हमें अपनी मातृभूमि का गर्व है। हम इसका गुणगान करते हैं, इसकी वन्दना करते हैं।

*

मंत्र--२८

'उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः ।
पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम् ।।'

पदार्थः–

उत्=ऊपर । ईराणाः=चढ़ते हुए, चलते-फिरते । उत्=और । आसीनाः=बैठे हुए । तिष्ठन्तः=स्थिर, गतिहीन, रुके हुए । प्रक्रामन्तः= गति करते हुए, चलते हुए । पद्भ्यां=पैरों के द्वारा । दक्षिणसव्याभ्यां= दायें तथा बाएं, दाहिने तथा बायें पैरों से । मा=नहीं (निषेध) । व्यथिष्महि=व्यथा पहुँचाएँ, पीड़ित करें । भूम्याम्=भूमि के ऊपर ।

विमर्श–इस मंत्र की काव्यमयी भाषा विशेष रूप से अवलोकनीय है । हम अपने जीवन में विभिन्न प्रकार के क्रिया-कलाप में लगे रहते हैं । कभी हम ऊपर चढ़ते हैं, चाहे पठार और पहाड़ों पर चढ़ें या वृक्ष उद्यान कृषि आदि की ऊपर चढ़कर व्यवस्था करें । हम समतल भूमि पर कभी खड़े रहते हैं, कभी बैठे रहते हैं, कभी दक्षिण और वाम दोनों पैरों से चलते हैं । इस सारे क्रिया-कलाप में हमसे किसी को दुःख, पीड़ा, मानसिक या शारीरिक व्यथा न पहुँचे ।

इस सीधे से मंत्र का एक भाव-गर्भित संदेश हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के लिए प्राप्त होता है । भूमि हमारी माता है और हम सब मातृभूमि की सन्तान हैं । इस प्रकार हम एक-दूसरे के भाई-बहन हैं । जैसे—भाई बहन को एक-दूसरे के साथ सहयोग पूर्वक रहना चाहिए और किसी को शारीरिक या मानसिक पीड़ा व्यथा नहीं पहुँचाना चाहिए, उसी प्रकार हम मातृभूमि के निवासी अपनी सामाजिक राष्ट्रीय व्यवस्था इस प्रकार करें कि कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति

को पीड़ित न करे और हमारी सामाजिक एवं राजकीय व्यवस्था ऐसी बने कि हम किसी भी वर्ग को पीड़ा न पहुँचाएँ ।

व्यक्ति कई बार अपने स्वार्थ को दूसरे के स्वार्थ के साथ टकराता हुआ पाता है । उस समय हम न्याय का सहारा लेकर ऐसा आचरण करें कि हमारे उठने, बैठने, चलने, फिरने में किसी को व्यथा न पहुँचे ।

हमारे सामाजिक जीवन में स्वाभाविक रूप से ही कई वर्ग बने रहते हैं । कृषकों का एक वर्ग है तो उद्योग कल-कारखाना चलाने वालों का दूसरा वर्ग है । व्यवसायियों का एक तीसरा ही वर्ग है, शान्ति, सुव्यवस्था, शासन चलाने वालों के अलग ही वर्ग हैं । किसान का स्वार्थ अपने उत्पादों को अधिक मूल्य में बेचने का है । उद्योगपति कच्चा माल, किसानों से सस्ते में खरीदता और ऊँचे दामों में बिक्री करता है । व्यवसायी तैयार माल को कम दाम में लेकर उपभोक्ता को ऊँचे दाम में बेचना चाहता है । इस प्रकार विभिन्न वर्गों में अनेक प्रकार के संघर्ष पैदा होकर एक-दूसरे को व्यथित करते हैं ।

इस छोटे से मंत्र का संदेश यह है कि हमारे सामाजिक और राजनीतिक जीवन में वर्ग संघर्ष (Class struggle) न होकर वर्ग समन्वय, सामंजस्य (Class co-operation, cordination) बना रहे, जिससे किसी को किसी से व्यथा न पहुँचे ।

*

मंत्र–२९

'विमृग्वरीं पृथिवीमावदामि क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम्
ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं घृतं त्वाभि नि षीदेम भूमे ।'

पदार्थ:–

विमृग्वरी=विशेष रूप से अन्वेषण करने वाली, शोधन करने वाली । पृथिवी=विस्तृत भूमि का । आवदामि=चारों ओर से अच्छी तरह गुणगान करता हूँ । क्षमां=सहने वाली को । भूमिं=सभी को निवास देनेवाली (भवन्ति भूतानि यस्याम्) । ब्रह्मणा (ब्रह्म=अन्न, ज्ञान आदि) अन्नों के द्वारा, ज्ञान के द्वारा । वावृधानाम्=वर्धन करने वाली, उन्नत करने वाली । ऊर्जं=बल, तेज, प्राण । पुष्टं=पोषण करने वाली, पुष्टिकारक । बिभ्रतीम्=भरण पोषण करती हुई । अन्नभागम्=सेवनीय खाद्य अन्न को । घृतं=घृत को । त्वा=तुमको, तुम्हारा । अभिनिषीदेम= चारों ओर से अच्छी प्रकार आश्रय लेते हैं । भूमे=हे भूमि माता ।

विमर्श–इस मंत्र में मातृभूमि का निवासी अपनी मातृभूमि की स्तुति कर रहा है । उसकी प्रशंसा में मातृभूमि का गुणगान करता हुआ कह रहा है कि मेरी मातृभूमि विमृग्वरी है । मृग्वरी शब्द दो धातुओं से बनता है । एक है 'मृग्' जिसका अर्थ है अन्वेषण करना और दूसरा है 'मंजूषा' जिसका अर्थ है शोधन करना । इस प्रकार विमृग्वरी का अर्थ हुआ कि विशेष प्रकार से अन्वेषण करने वाली और शोधन करने वाली । अन्वेषण करना निर्जीव पृथ्वी का काम नहीं है । अन्वेषण तो मातृभूमि के निवासी विद्वान् बहादुर अन्वेषणशील करते हैं । अन्वेषण की बहुत दिशाएं हैं । उदाहरण के लिए वनस्पतियों का अन्वेषण है, उनके औषधीय गुणों का अन्वेषण है, उन वनस्पतियों से

निर्मित औषधियों का अन्वेषण है । औषधियों से किस रोग में किस प्रकार उपकार मिलेगा, किस प्रकार सेवन करना है, यह सब अन्वेषण है और जिस देश के नागरिक विद्वान् ये सब अन्वेषण करेंगे यह उसी देश का अन्वेषण कहलाएगा । जिन औषधियों की खोज भारतीयों ने की है वह भारत भूमि का अन्वेषण है, जिन औषधियों को यूनानियों ने खोजा है वे यूनान के अन्वेषण हैं । इसी प्राकर यूरोप, अमेरीका सभी देशों की खोज है और सबके अन्वेषण हैं ।

खोज वैज्ञानिक भी होती है, भू गर्भ की भी होती है । पृथ्वी के अन्दर कहाँ क्या पदार्थ पाया जाता है, उसका क्या प्रयोग है, क्या उपयोग है, ये सब उस देश का ही अन्वेषण है । इस प्रकार मातृभूमि विशिष्ट प्रकारों से अन्वेषण करने वाली है ।

पृथिवी अनेक प्रकार से शोधन करने वाली है । स्वच्छ पवित्र मिट्टी से धोने से शरीर का मल, दुर्गन्ध दूर होती है । पहलवान मिट्टी रगड़कर बल, शक्ति, ऊर्जा प्राप्त करते हैं । रेह आदि कई प्रकार की मिट्टी से कपड़ों का मैल धुल जाता है । मुलतानी मिट्टी से शरीर निर्मल हो जाता है । इस प्रकार भूमिमाता अनेक प्रकार से विशिष्ट रीतियों से शोधन करती है । इसीलिए मातृभूमि का निवासी अपनी भूमिमाता का गुणगान करता है ।

हमारी भूमिमाता क्षमाशील है । अनेक प्रकार के आघातों को सह लेती है । संसार के सभी प्राणी अपने शरीर से मल आदि को पृथ्वी माता के हवाले कर देते हैं और पृथ्वी माता सबको सह लेती है । सभी को क्षमा कर देती है ।

पृथ्वी पर हम कृषि करते हैं । पृथ्वी माता की छाती पर हल चला कर हम कृषि करते हैं और हमारी मातृभूमि हमें अनेकों गुना लौटा कर हमारा पालन-पोषण करती है । हम भूमि माता को खोदकर भूगर्भ से अनेक प्रकार की बहुमूल्य वस्तुएं पृथ्वी से प्राप्त करते हैं

और पृथ्वी माता हमें सब कुछ क्षमा कर देती है, हमारे सारे उत्पात सह लेती है।

हमारी पृथ्वी माता हमें (ब्रह्म) अन्न के द्वारा बढ़ाती है। हमें (ब्रह्म) ज्ञान के द्वारा अनेक प्रकार से उन्नत करती है। मनुष्य की सभ्यता संस्कृति का सम्पूर्ण विकास ज्ञान के द्वारा ही हुआ है और उसी ज्ञान से हमारी मातृभूमि हमें उन्नत करती है।

मंत्र के द्वितीय भाग में प्रार्थना या स्तुति की जाती है कि हे मातृभूमि! तू हमें ऊर्जा, तेज, शक्ति, प्राण–शक्ति सब कुछ प्रदान करती है। हमारे लिए पुष्टिकारक अन्न आदि घी, दूध फल, मूल, मेवे आदि सभी को तू ही धारण करती हैं और इन सभी पुष्टिकारक पदार्थों से हमारे शरीर और मन, मस्तिष्क का पोषण होता है।

अन्त में कहते हैं कि हे भूमिमाता ! इन सारे उपकारों से तुम हमें पांलती हो, हमारा पोषण करती हो, हमें उन्नत बनाती हो। इसीलिए हम सब प्रकार से तुम्हारा आश्रय लेते हैं, तुम्हारी गोद में बैठने का सुख लाभ प्राप्त करते हैं।

*

मंत्र–३०

'शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु यो नः सेदुरप्रिये तं नि दध्मः ।
पवित्रेण पृथिवि मोत्पुनामि ।।'

पदार्थः–

शुद्धाः=शुद्ध, निर्मल । नः=हमारे । आपः=जल । तन्वे=शरीर के लिए । क्षरन्तु=प्रवाहित होते रहें । यः=जो । नः=हमारा । सेदुरप्रिये=(सेदुः+अप्रिये) हमारे अप्रिय विनाशक । तंनिदध्मः=वे दूर हों । पवित्रेण=पवित्र निर्मल से । पृथिवि=हे पृथिवी माता, विस्तृत मातृभूमि । मा=(माम्) अपने को, हम सबको । उत्पुनामि=अच्छी तरह शुद्ध पवित्र करूँ ।

विमर्श–मातृभूमि का नागरिक अपनी मातृभूमि से अनुरोध करता है कि हे मातृभूमि ! हमारे उपकार के लिए, हमको पवित्र निर्मल स्वंच्छ बनाये रखने के लिए निर्मल शुद्ध पवित्र जल की धारा सदा प्रवाहित होती रहे । जल हमारे शरीर को स्वच्छ रखने के लिए, स्नान करने के काम आता है । जल से ही हम अपने वस्त्र और पात्र आदि निर्मल, पवित्र करते हैं । हमारे जीवन में उपभोग और उपयोग की जितनी भी वस्तुएं हैं वे सब जल से ही शुद्ध, स्वच्छ की जाती हैं । चाहे खाने का सामान हो या पहनने के कपड़े हों या निवास के लिए घर आदि, यातायात के लिए सड़क आदि हों, सबको शुद्ध पवित्र करने में जल का महत्वपूर्ण योगदान है । बल्कि यू कहें कि जल का सबसे अधिक महत्व पूर्ण योगदान है । किन्तु कई बार जल अपने में शुद्ध, पवित्र नहीं होता ।

जल में मिट्टी के कण मिलकर जल को मटमैला बना देते हैं

और वह उपयोग करने योग्य नहीं रह जाता। जल में अनेकों प्रकार के रासायनिक मिश्रण हो जाते हैं। कहीं लोहा अधिक है, कहीं सल्फर अधिक है, कहीं अन्य रासायनिक द्रव्य मिले हुए हैं। ये रासायनिक मिश्रण हमारे स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक हैं। हमें शारीरिक रोग दोषपूर्ण जल से बहुत होते हैं। इसीलिए मातृभूमि से प्रार्थना है कि हमारे लिए शुद्ध जल प्रवाहित होता रहे। शुद्ध जल की धारा पृथिवी के ऊपर तो होती ही है, पृथिवी के अन्दर भी शुद्ध जल की धारा बहती रहती है। सभी जल हमारे लिए शुद्ध, पवित्र बने रहें।

जल शुद्ध बना रहे, इसका एक भाव यह भी है कि हमारे देश की आर्थिक, औद्योगिक और प्रशासनिक व्यवस्था ऐसी उत्तम कोटि की हो कि हमारा जल, शुद्ध, पवित्र बना रहे। जल को अशुद्ध और हानिकारक बनाने में पर्यावरण, उद्योग, बड़े-बड़े शहर आदि सामान्य कारण हैं। पर्यावरण का प्रदूषण जल को दूषित कर देता है। बड़े-बड़े उद्योग कल-कारखाने अपना कूड़ा-कचरा सब कारखानों से बाहर निकालकर नदियों तक पहुँचा देते हैं। बड़े-बड़े शहरों में हर घर के साथ भीतर ही शौच, स्नान, कपड़े साफ करना, रसोई के सब बर्तन सामान स्वच्छ करने का काम घर के भीतर ही होता है। बड़े-बड़े पाइपों से यह गन्दगी बाहर निकालकर नालों और नदियों में डाल दी जाती है। अन्ततः यह सब जल को ही प्रदूषित करता है। मंत्र में भाव यह है इस सारे प्रदूषण से हम अपने जल को शुद्ध रखें। कभी-कभी अन्तर्राष्ट्रीय नदियाँ दूसरे देश का प्रदूषण भी बहाकर ले जाती हैं और हमारे देश के जल को प्रदूषित कर देती है। हमारी प्रार्थना यह है कि हम इस सारे प्रदूषण से अपने देश के जल को सुरक्षित रखें और हमारी मातृभूमि हमको शुद्ध जल दे जिससे हम अपनी जनता को और अपने देश को पवित्र बनाये रखें।

*

मंत्र–३१

यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीर्यास्त भूमे अधराद्याश्च पश्चात् ।
स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु मा निपप्तं भुवने शिश्रियाणः ।।

पदार्थः–

याः=जो । ते=तुम्हारी । प्राचीः=पूर्व दिशा । प्रदिशः=उप दिशाएँ, ईशान, आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य । याः=जो । उदीची=उत्तर दिशा । याः=जो । ते=तुम्हारी । भूमे=हे मातृभूमि । अधरात्=दक्षिण दिशा (नीचे की दिशा) । पश्चात्=पश्चिम की दिशा । स्योनाः=सुखकारी, सुख देने वाली । ताः=वे सब दिशाएं और उपदिशाएं । मह्यं=हमारे लिए । चरते=चलने से, काम करने में, जीवन-व्यापार में । भवन्तु=होवें । मा=हमारे लिए । निपप्तं=पतन को न प्राप्त होना । भुवने=इस लोक में। शिश्रियाणः=कर्त्तव्य कर्मों को करते हुए ।

विमर्श–प्रत्येक मातृभूमि की चार दिशाएं और चार उपदिशाएं होती हैं । पूर्व, पश्चिम आदि दिशाएं है और ईशान, आग्नेय आदि उपदिशाएं हैं । सब मिलाकर मातृभूमि की चारों ओर की सीमाएं बन जाती हैं । इन्हीं सीमाओं के बीच में अपनी मातृभूमि पर राष्ट्र के निवासी चलते-फिरते हैं, कृषि, उद्योग, व्यवसाय, आदि करते हैं । मंत्र में मातृभूमि से यह प्रार्थना है कि ये सब हमारे लिए सुखकारी हों, हमारे लिए कल्याणकारी हों ।

यह आलंकारिक वर्णन है । इसका दो प्रकार का भाव है–

(१) मातृभूमि का भीतर का स्वरूप सभी ओर कृषि, उद्योग, व्यवसाय व्यापार के लिए सर्वथा उपयुक्त हो । भूमि उपजाऊ हो, यातायात के साधन सुलभ हों और जलवायु, कृषि, उद्योग आदि के

अनुकुल परिस्थिति हो । सामाजिक रूप से शान्ति, सुव्यवस्था सदा सर्वत्र बनी रहे जिससे मातृभूमि का सुखद स्वरूप हमारे लिए कल्याणकारी बना रहे ।

जातीय, सामाजिक, सामंजस्य और शान्ति बनी रहे तो कृषि, उद्योग, व्यवसाय ये सब मातृभूमि को सुखदायी बनाये रखते हैं । यदि जातीय,प्रान्तीय आंचलिक संघर्ष होने लगे तो मातृभूमि का सुखदायी रूप नष्ट हो जाता है । राष्ट्र का हर खण्ड देश के सभी नागरिकों का है । उदाहरण के लिए मुम्बई देश के सभी भागों के लिए है, चाहे उत्तर भारत का कोई हो या पश्चिम का हो या और कहीं का हो । देश का प्रत्येक नागरिक द्रविड़ हो, मराठा हो, तमिल हो, तेलगू हो, उड़िया हो, बंगाली हो, आसामी, पंजाबी या उत्तर भारत का, किसी दिशा का, हो सबके लिए मातृभूमि सब जगह, सभी दिशाओं में समान है । कोई कहीं का भी हो सब जगह आ जा सकता है और अपनी आजीविका चला सकता है । सभी को सब जगह समान अधिकार है ।

(२) हमारी मातृभूमि की आन्तरिक सुव्यवस्था पुलिस और न्याय व्यवस्था चारों दिशाओं और उपदिशाओं में, देश के कोने-कोने में इतनी सुन्दर और सुदृढ बनी रहे कि देश में चोर, डाकू, लुटेरे कभी अशान्ति और आन्तरिक असुरक्षा पैदा करने की सोच भी न सकें।

जब देश में सुख-शान्ति बढ़ती है, जब धन, सम्पत्ति, वैभव की प्रचुरता बढ़ जाती है तो मनुष्य परिश्रम न करके आराम करने की सोचने लगते हैं । परिश्रम घट जाता है और नागरिकों का तपस्वी जीवन विलासी हो जाता है और विलास के साथ दुराचार, सुरा, सुन्दरी, जुआ, आदि का प्रचलन होने लगता है । कभी-कभी प्रमादी सरकार उत्पादन शुल्क (Excise duty) और उपभोग कर (Consumer Tax) आदि कमाने के लिए शराब का धन्धा और नाईट क्लब,

व्यभिचार के अड्डों को ठेका देकर सरकार के लिए राजस्व कमाती है। ऐसे राष्ट्रों में इस प्रकार की राजनीति समाज-व्यवस्था, शासन व्यवस्था, चालू होने पर राष्ट्र के नागरिकों का चरित्रबल गिरने लगता हैं और सामूहिक रूप से राष्ट्र का चारित्रिक, नैतिक पतन हो जाता है ।

इस मंत्र में देश के नागरिक मातृभूमि से प्रार्थना करते हैं ।

'मा निपप्तं भुवने शिश्रियाणः'

हे मातृभूमि ! ऐसी व्यवस्था बनाओ कि देश के नागरिक अपने कर्त्तव्य-कर्मों को करते हुए, जीवन की आजीविका कमाते हुए, पारिवारिक और सामाजिक जीवन जीते हुए पतन को न प्राप्त हों । हमारे देश में असहायों, निर्बलों को सुरक्षा मिले, स्त्रियां और निर्बल निर्भय रहें, वृद्धों का सम्मान हो । हे मातृभूमि ! हमारा कभी पतन न हो ।

*

मंत्र–३२

'मा नः पश्चान्मा पुरस्तान्नुदिष्ठा मोत्तराधरादुत।
स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन्परिपन्थिनो वरीयो यावया वधम्।।'

पदार्थः–

मा=नहीं। नः=हमारे। पश्चात्=पीछे से, पश्चिम से। मा=नहीं। पुरस्तात्=सामने से, पूर्व से। नुदिष्ठाः=पीड़ित करे, आक्रमण करे। मा=नहीं, उत्तरात्=उत्तर से। अधरात्=दक्षिण से। उत्=और। स्वस्ति=कल्याण, भलाई करने वाली। भूमे=हे भूमि माता, मातृभूमि। नः=हमारे। भव=होवे। विदन्=समीप आवे (आक्रमण करें)। परिपन्थिनः=चोर, लुटेरे, शत्रु। वरीयः=बहुत दूर। यावया=पहुंचा दो, दूर कर दो। वधम्=वध, हनन।

विमर्श–मातृभूमि का नागरिक अपनी मातृभूमि से यह प्रार्थना कर रहा है कि हमारे देश के ऊपर देश की चारों दिशाओं से, देश के बाहर से कोई शत्रु विरोधी न हम पर आक्रमण कर सके और न हमको पीड़ा पहुँचा सके। हे मातृभूमि तुम अपने देश की सन्तानों को ऐसा बना दो कि उन्हें कोई पीड़ित न कर सके।

अपने देश को इतना समृद्ध, इतना धनवान्, सैनिक, बल, आयुधों, हथियारों, आवागमन के साधनों से ऐसा बलवान् सम्पन्न बना दो कि विदेशी शत्रुओं की कभी हिम्मत न पड़े कि वह हमारे देश पर आक्रमण करने की सोचें भी और यदि कभी वे आक्रमण करने का दुस्साहस करें तो हममें इतनी शक्ति, इतना सामर्थ्य, हमारे सैनिकों में ऐसी शूरता, वीरता भर दो कि हम उन्हें पराजित करके दूर भगा दें और उनका आक्रमण व्यर्थ हो जाये। यह सैनिक आक्रमण और

हथियारों के युद्ध की बात हुई ।

कभी-कभी दूसरे देशों के शत्रु सैनिक आक्रमण तो नहीं करते किन्तु कई रूप से देश के नागरिकों को पीड़ा पहुँचाने का प्रयास करते हैं । सभी देशों को कुछ न कुछ आयात-निर्यात करना ही पड़ता है । कभी-कभी विदेशी विरोधी आर्थिक नाकेबन्दी करके हमारे देश को आवश्यक आयात, नहीं करते । कभी ऐसा भी होता है कि हमारे निर्यात को विदेशी बाजार में प्रतियोगिता करके हमारे माल को नहीं बिकने देते । भाव इतना ही है या लड़ाई चाहे सैनिक और हथियारों की हो या आर्थिक नीतियों की हो, हमारे विरोधी देश के बाहर और भीतर ऐसी परिस्थिति पैदा कर देते हैं कि हमारे देश को और हमारे नागरिकों को पीड़ा पहुँचने लगती है । हमारी मातृभूमि से यह प्रार्थना है कि हमें कोई विदेशी किसी प्रकार की पीड़ा न पहुँचा सके ।

विशेष विचार

मंत्र '३१' और '३२' में यह भावना व्यक्त की गयी है कि हमारे देश में आन्तरिक सुव्यवस्था और बाहरी शान्ति और सुरक्षा सदा बनी रहे ।

आन्तरिक शान्ति और सुव्यवस्था प्रशासकों की सूझ-बूझ की तथा पुलिस बल की चेष्टा तथा नागरिकों की न्यायप्रियता एवं हमारे देश के भीतर और बाहर न्यायालयों के निर्णय की प्रतिष्ठा सदा बनी रहे तथा देश के नागरिकों का विश्वास न्यायलयों में सदा बना रहे ।

जब देश में आन्तरिक सुरक्षा और शान्ति बनी रहती है तो देश का उत्थान सदा होता रहता है । एक तथ्य को सदा ध्यान में रखना चाहिए कि नागरिकों के तप न्यायप्रियता से, परिश्रम से किसी भी देश की सम्पन्नता सुनिश्चित हो जाती है । जब देश में सुव्यवस्थां रहती है तो देश का धन उपज, कारबार सब कुछ उन्नति करता है । जब देश की आन्तरिक सम्पन्नता बढ़ जाती है तो नागरिकों में तप, परिश्रम की

कमी हो जाती है । विलास-प्रियता फैशन, सुरा-सुन्दरी, नाईट-क्लब आदि बढ़ने लगते हैं । सरकार कर (Excise duty) कमाने के लिए शराब आदि कुचलन को सहारा देने लगती है । ऐसे वातावरण में देश की शूरता, वीरता खत्म हो जाती है । देश का आर्थिक उत्पादन घटने लगता है । शराब, जुआ आदि दुर्व्यसनों के कारण नागरिकों में मन मुटाव बढ़ जाता है । जब आर्थिक उत्पादन घटने लगा, उद्योग व्यवस्था लड़खड़ाने लगी तो विदेशी इस आन्तरिक अव्यवस्था, असुरक्षां का लाभ उठाते हैं । आन्तरिक दलबन्दी से जांतीय, प्रान्तीय संघर्षों को सहारा मिल जाता है और देश के भीतर ही कभी प्रकट और कभी प्रच्छन्न गृह-युद्ध की स्थिति बन जाती है ।

शासन-तंत्र, पुलिस और न्यायप्रणाली के दूषित हो जाने से आन्तरिक शान्ति, सुव्यवस्था और सुरक्षा घट जाती है । इसका फल होता है कि नागरिकों को पीड़ा मिलती है ।

विदेशी लोग जब इस आन्तरिक दुर्बलता को जान पाते हैं तो सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि सैनिक शक्ति, आयुध, सामरिक सामग्री निर्बल पड़ जाती है । इस सूरत में विदेशियों के आक्रमण की सम्भावना बढ़ जाती है ।

मंत्र '३१' और '३२' दोनों में इन निर्बलताओं से देश की जनता को आगाह किया गया और यह प्रेरणा की गयी है कि हम आन्तरिक और बाह्य दोनों रूप से सुरक्षित और सुखी रहें, हमारा सदा कल्याण होता रहे ।

*

मंत्र–३३

'यावत्तेऽभि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना।
तावन्मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां समाम्।।'

पदार्थः–

यावत्=जितना, जहां तक। ते=तुम्हारे। अभिविपश्यामि=पदार्थों को चारों ओर से अच्छी तरह देखता हूँ। भूमे=हे मातृभूमि। सूर्येण= सूर्य के प्रकाश में। मेदिना=स्नेह से भरपूर मित्र। तावत्=उतना, वहां तक। मे=हमारी। चक्षु=आँख, दर्शन शक्ति। मा=नहीं। मेष्ट=कष्ट पाये, हिंसित हो। उत्तरामुत्तरां=आगे और आगे, अगले और अगले। समाम्=वर्षों में, वर्षों तक।

विमर्श–इस मंत्र में पहला तथ्य यह बताया गया है कि मातृभूमि के नागरिक मातृभूमि से प्रार्थना कर रहे हैं कि हे हमारी मातृभूमि ! जीवन के अगले से अगले वर्षों में अपने परमस्नेही मित्र सूर्य के आलोक में जितना हम देख सकें उतनी दूर, उतने समय तक मेरी आँखों में कोई पीड़ा, दुःख, कष्ट न हो।

मातृभूमि के प्रति किये गये इस अनुरोध में एक तथ्य यह सामने आता है कि भगवान सूर्य देव हमारे परम स्नेही मित्र, शुभचिन्तक, हमारा कल्याण करने वाले हैं। सूर्य देव हमें आलोक, प्रकाश देते हैं, जो हमारे देखने के लिए आवश्यक है। सूर्य हमारे लिए, जीवन धारण करने के लिए, सारे संसार में प्राणों की आपूर्ति करते हैं। प्रश्नोपनिषद् के अनुसार सूर्य की किरणें संसार में प्राण बरसाती हैं। ऋग्वेद तो सूर्य को साक्षात् प्राण कहते ही हैं —''प्राणः प्रजानाम् उदयति एष सूर्यः'' अर्थात् सूर्य समस्त प्रजाओं का प्राण होकर,

बनकर उदय हो रहा है। सूर्य संसार की सड़ाँध, मल आदि को अपनी प्रचण्ड किरणों से सुखाकर संसार को हमारे लिए निर्मल स्वच्छ बना देता है। सूर्य के प्रचण्ड ताप से जल सूखकर, भाप बनकर आकाश में बादल बन जाता हैं और वही बादल संसार के जीवन को चलाने के लिए वृष्टि करता है जिससे कृषि होती है। पेड़-पौधे, वनस्पतियाँ सभी लहलहाती हैं और संसार के मानव , पशु, प्राणियों को पीने, नहाने और सफाई करने के लिए स्वच्छ जल उपलब्ध होता है।

हमारी प्रार्थना मातृभूमि से यह है कि वर्षों-वर्ष, जब तक हमारा जीवन है, हम इस संसार में चलते-फिरते हैं, तब तक हमारे परम मित्र सूर्य हमारा सहयोग करते रहें और हमारी आँखों में कोई कष्ट न हो।

आँखें यहाँ प्रतीक हैं और आशय यह है कि हमारी ज्ञान-इन्द्रियाँ और हमारी कर्म इन्द्रियाँ हमारे सम्पूर्ण जीवन भर स्वस्थ और सक्रिय बनी रहें और हमारी किसी भी इन्द्रिय में कभी कोई कष्ट न हो।

जैसे हमारी आँखें उपलक्षण से हमारी सभी ज्ञान इन्द्रियों और कर्म इन्द्रियों को स्वस्थ और कष्ट रहित रहने का भाव प्रकट करती हैं, उसी प्रकार सूर्य भी हमारे जीवन के सहयोगी भौतिक उपादानों का उपलक्षण है। जल, वायु, पृथ्वी आदि सारे भौतिक पदार्थ सूर्य की तरह हमारे सहयोगी और उपयोगी बने रहें और हमें किसी प्रकार का शारीरिक कष्ट न हो।

मंत्र में यह भाव भी प्रकट होता है कि वर्षों-वर्ष हमारा जीवन चलता रहे, बुढ़ापे तक हमारी इन्द्रियाँ स्वस्थ रहें और हमारे जीवन, शरीर और इन्द्रियों में कोई पीड़ा न हो।

*

मंत्र–३४

'यच्छयानः पर्यावर्ते दक्षिणं सव्यमभि भूमे पार्श्वम् ।
उत्तानास्त्वा प्रतीचीं यत्पृष्टीभिरधिशेमहे ।
मा हिंसीस्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवरि ।।'

पदार्थः–

यत्=जब । शयानः=लेटा हुआ, सोता हुआ । पर्यावर्ते=करवट लें । दक्षिणं=दाहिना । सव्यम्=बायां । भूमे=भूमिमाता । पार्श्वम्=बगल, करवट । उत्तानाः=उतान (पीठ के बल लेटे, ऊपर मुख किये) । त्वा= तुम्हारे । प्रतीचीं=पश्चिम की ओर । यत्=जो । पृष्टीभिः=पीठ के बल । अधिशेमहे=सुख से शयन करते हैं । मा=नहीं । हिंसीः=कष्ट पावें । तत्र=वहाँ । नः=हमारे । भूमे=हे भूमिमाता । सर्वस्य=सबको । प्रतिशीवरि= सबको सुलाने वाली ।

विमर्श–इस मंत्र में हमारे विश्राम, शयन का वर्णन है । मनुष्य जीवन में कार्य करना, क्रियाशील रहना बहुत आवश्यक है । जब हम डटकर परिश्रम पूर्वक दिन भर काम में लगे रहते हैं तो हमारा शरीर थकक्र चूर हो जाता है । परिश्रम के पश्चात् रात्रि में विश्राम बहुत आवश्यक है । हम जब निश्चिन्त सोते हैं तो दायें-बायें करवटें लेकर सोना, उतान सोना सब कुछ होता रहता है । निश्चिन्त नींद ले लेने पर शरीर फिर से शक्ति का संग्रह कर लेता है, कार्य करने की क्षमता जो थक जाने पर नष्ट हो गयी थी, फिर से आ जाती है । हमारे शरीर की कार्य करने वाली बैटरी फिर से चार्ज हो जाती है (Battery gets recharged) इसीलिए निश्चिन्त निद्रा प्रभु का बहुत बड़ा वरदान है ।

मंत्र में यह अलंकारिक वर्णन है कि हमारी मातृभूमि हमें सुख

से सोने का सुवसर दे । किसी राष्ट्र के नागरिक कब सुख से सोते हैं ? सुख से सोना तब सम्भव है जब भोजन, वस्त्र, आवास, औषधि, उपचार, सब ओर से नागरिकों को निश्चिन्तता हो । जब पशु-प्राणी भूखे हों और खाने को न मिले, उस स्थिति में कोई सुख की नींद कहाँ से सो सकता है । इसी प्रकार बच्चे भूखे, नंगे या रोग से ग्रसित हों तो भी सुख की नींद नहीं आती । इसका भाव यह हुआ कि सुख की नींद सोने का अवसर तब प्राप्त होता है जब भोजन, वस्त्र, आवास, औषधि, उपचारं आदि आलम्बन पदार्थों की कोई कमी न हों।

जब देश में, समाज में शासन, शान्ति, कानून और व्यवस्था (Law and Order) की स्थिति ठीक हों, न चोरों का भय, न डाकू, लुटरों का भय, तभी राष्ट्र के नागरिक सुख की नींद सो पाते हैं । इस प्रार्थना में यह भी गतार्थ है कि हमारी मातृभूमि में शान्ति, सुव्यवस्था की स्थिति पूर्ण रूप से सन्तोषजनक है ।

राष्ट्र के नागरिक सुख-शान्ति की नींद तब सो पाते हैं जब आन्तरिक शासन व्यवस्था, शान्ति-सुरक्षा सब ठीक हो । साथ ही इस सुख की नींद सोने की परिस्थिति तब बन पाती है जब बाहर से किसी दूसरे विदेशी शत्रु का, विदेशी आक्रमण का भय न हो । जब अपना राष्ट्र, अपने सैनिक, अपने देश में सुरक्षा की तैयारी इतनी अच्छी हो, अपने देश की सैनिक शक्ति, युद्ध सामग्री आदि इतनी अधिक, इतनी प्रभावशाली हो कि विदेशी शत्रुओं का हौसला ही न हो पावे । विदेशी शत्रुओं को यह डर बना रहे कि यदि उन्होंने हमारे देश पर आक्रमण किया तो उन्हें लेने के देने पड़ जायेंगे । ये सभी स्थितियाँ अर्थात् भोजन, वस्त्र, आवास, औषधि आदि अवलम्बन पदार्थ प्रचुर मात्रा में हों । साथ ही आन्तरिक शान्ति सुरक्षा की स्थिति से हम निश्चिन्त रहें । अन्तिम एवं अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थिति यह है कि हमें विदेशी शत्रुओं के आक्रमण का भय न हो ।

मंत्र में एक और प्रार्थना है कि हे हमारी प्यारी मातृभूमि ! तुम कभी हमारी हिंसा मत करना । भूमि तो निर्जीव है । वह हमारी हिंसा न करे यह भी एक अलंकार है । हमारी ऐसी व्यवस्था हो कि हमारे देश में न कभी बाढ़ आए, और न कभी सूखा अकाल पड़े । हम अपनी मातृभूमि की ऐसी सुव्यवस्था करें कि पृथ्वी के ऊपर की सम्पत्ति भूमि, जंगल, नदी, पहाड़ सभी हमारे अनुकूल सुखदायक बना रहें । साथ ही भूगर्भ की सम्पत्ति, खनिज पदार्थ आदि हमारे लिए सदा उपयोगी और सुखदायी रहें ।

*

मंत्र–३५

'यत्ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु ।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम् ।।'

पदार्थ:-

यत्=जब । ते=तुम्हारा । भूमे=हे भूमिमाता । विखनामि=विशेष रूप से, खनू, खोदूं, जुताई करूँ । क्षिप्रं=शीघ्र । तत्=वह । अपि रोह-तु=अंकुरित हो, उगे पूरजाय । मा=नहीं । मर्म=मर्म स्थान । विमृग्वरि=विशेष रुप से खोजने और शुद्ध करने वाली भूमिमाता । ते=तुम्हारा हृदयम्=हृदय । अर्पिपम्=पीड़ित करूँ (रिप=To injure) ।

विमर्श–इस मंत्र में भूमे और विमृग्वरि दोनों सम्बोधन के रूप में हैं । राष्ट्र का निवासी अपनी मातृभूमि से निवेदन कर रहा है कि हे भूमिमाता ! तुम विमृग्वरी विशेष रूप से खोजने योग्य हो और हे भूमिमाता ! तुम विशेष रूप से शुद्ध पवित्र करने वाली हो । भूमि का स्वयं अर्थ है–''भवन्ति भूतानि यस्याम्'' जिसमें सारे भूत, प्राणी पैदा होते है, उन्नति करते हैं, उसी पर रहते हैं । विमृग्वरि सम्बोधन में है पहली बात यह है कि हम अपने व्यक्तिगत कार्यों के लिए, परिवार के उपयोग के लिए, घर बनाने और खेती करने के लिए, कल-कारखाना, नहर, सरोवर आदि अनेक प्रकार के सामाजिक कार्यों के लिए उपयुक्त भूमि का चयन करते हैं, उसे खोजते हैं । किसी भी स्थान पर हमारे लिए उपयोगी सभी कार्य नहीं हो सकते । कृषि के लिए और तरह की भूमि चाहिए । घर अथवा ग्राम या नगर बसाने के लिए अन्य प्रकार की भूमि का चयन किया जाता है । उसी तरह कल-कारखाने के लिए भी भूमि का चयन करते हैं । अधिक उपजाऊ हो

या तीन फसल देने वाली भूमि पर फैक्ट्री कारखाना बनाना हानिकारक है। सब जगह कुएं बनाकर पानी नहीं निकाला जा सकता। सभी जगह नहर, तालाब बनाना उपयोगी नहीं हो सकता। सभी कामों के लिए अलग-अलग भूमि चाहिए।

विमृग्वरी का एक अर्थ और भी है शुद्ध करने वाली। शुद्ध मिट्टी से हाथ, शरीर सब कुछ अच्छी तरह शुद्ध होता है। साबुन, सोडा, एसिड, आदि जितने भी शुद्ध करने वाले पदार्थ हैं सबका उत्पत्ति का स्थान धरती ही है, चाहे रंसायन हो, चाहे रेह या मिट्टी, मुलतानी मिट्टी या जो भी हो। स्वच्छता के सारे उपकरणों का उपादान भूमिमाता ही है, अतः मंत्र में भूमिमाता को शुद्ध करने वाली विमृग्वरि कहा गया है। मंत्र में यह कहा गया है कि हे भूमि माता हम जो कुछ भी खोजते हैं वह विशेषता पूर्वक खुदाई की जाये (विखनामि)। कृषि के लिए जितना जिस प्रकार खोदना होता है, नहर, तालाब, सरोवर के लिए जितना जिस प्रकार खोदना हो, वह सब शीघ्रता से परिपूरित हो। कृषि शीघ्रता से उपजे, बीज शीघ्र अंकुरित हो। हमारे जलाशय शीघ्रता से परिपूर्ण हो जायें।

हम लोहा, कोयला आदि अनेक प्रकार के खनिज द्रव्यों के लिए खुदाई करते हैं। यह सब खुदाई के पश्चात् ऊसर बंजर न हो जाये। सब पर विशेष रूप से उपयोगी कृषि आदि की उर्वरकता पुनः हो जाये।

मंत्र में यह भी कहा है कि हे धरतीमाता ! हम तुम्हारे मर्म स्थानों को, तुम्हारे हृदय को अपने उपयोग के लिए खुदाई करते हैं, चीरते-फाड़ते हैं। हे माता ऐसी कृपा करो कि तुम्हारे मर्म स्थानों की, हृदय की हमसे कभी हिंसा न हो जाये। तुम्हारी उर्वरकता, तुम्हारा रस कभी नष्ट न हो जाये, जिससे कि माता तुम हमारे लिए पालन पोषण करने वाली सदा बनी रहो। *

मंत्र–३६

'ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः ।
ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम् ।।'

पदार्थः–

ग्रीष्मः=ग्रीष्म ऋतु । ते=तुम्हारे । भूमे=हे भूमि माता । वर्षाणि=वर्षा ऋतु । शरद्=शरद ऋतु । हेमन्तः=हेमन्त ऋतु । शिशिरः=शिशिर ऋतु । वसन्तः= वसन्त ऋतु । ऋतवः=ऋतुएँ । विहिता=विहित की गयी हैं, बनायी गयी हैं । हायनीः=प्रतिवर्ष होने वाली । अहोरात्रे=दिन और रात । पृथिवि=हे विस्तार वाली भूमिमाता (पृथु=विस्तारे) । नः=हमारे लिए । दुहाताम्= दोहन करने वाले हों, देने वाले हों ।

विमर्श–भूगोल में दो गोलार्द्ध हैं उत्तरी गोलार्द्ध और दक्षिणी गोलार्द्ध । पृथिवी के मध्य भाग में भूमध्य रेखा या विषुवत् रेखा की कल्पना की गयी है । ऐसी कोई रेखा धरती पर खींची हुई नहीं है । यह मात्र कल्पना है । विषुवत् रेखा के उत्तर २३.५° अंश उत्तर कर्क रेखा की कल्पना है और २३.५° अंश दक्षिण मकर रेखा की कल्पना की गयी है । सूर्य अपनी गति के अनुसार उत्तर में कर्क रेखा तक आता है और दक्षिण में मकर रेखा तक जाता है । सूर्य जब विषुवत् रेखा से उत्तर की ओर कर्क रेखा पर रहता है तो उत्तरी गोलार्द्ध में ग्रीष्म ऋतु और दक्षिणी गोलार्द्ध में शीत ऋतु होता है । भारतवर्ष उत्तरी गोलार्द्ध में पड़ता है और कर्क रेखा इसके मध्य से होकर मानी गयी है । इस प्रकार गर्मी और शीत दोनों का यहां अच्छा प्रभाव रहता है । ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर और वसन्त ६ ऋतु बनती

हैं। संसार में कम देश हैं जहां ६ प्रकार की ये ऋतुएँ पायी जाती है। हमारे देश की भौगोलिक स्थिति ऐसी सुन्दर है कि हमारे यहां ये छहों ऋतुएँ होती है। प्रभु परमेश्वर ने हमारी मातृभूमि पर प्रति वर्ष यह छः ऋतुओं का ऋतु चक्र चलाया हुआ है।

कुछ फल, फूल, अन्न, मूल, वनस्पतियाँ ग्रीष्म जलवायु में उत्पन्न होते हैं। उदाहरण के लिए आम, जामुन, जूट, नारियल, धान आदि ग्रीष्म ऋतु के उत्पादन हैं। सेव, संतरे, और गेहूँ आदि शीत ऋतु के उत्पादन हैं। भारतवर्ष ऐसा देश है जहां ग्रीष्म, शीत, समशीतोष्ण सब प्रकार का जलवायु पाया जाता है। यहां दिन-रात भी छोटे-बड़े होते रहते हैं।

परमेश्वर ने भारतवर्ष को भौगोलिक रूप से ऐसे सुन्दर स्थान पर बनाया है कि यहां सब प्रकार की जलवायु और इस जलवायु में सभी अन्न, मूल, फल, फूल उत्पन्न होते हैं। अतएव देश का निवासी अपनी मातृभूमि से निवेदन करता है कि हे विस्तारशील मातृभूमि ! तुम हमारे लिए उत्कृष्ट प्रकार की वनस्पति, औषधि, फल, मूल आदि का दोहन , उपलब्ध प्राप्त कराती रहो।

*

मंत्र– ३७

'याप सर्पं विजमाना विमृग्वरी यस्यामासन्नग्नयो ये अप्स्वन्तः
परा दस्यून्ददती देवपीयूनिन्द्रं वृणाना पृथिवी न वृत्रम् ।
शक्राय दध्रे वृषभाय वृष्णे ।।'

पदार्थ:–

या=जो पृथिवी माता । अप=दूर । सर्पं=सर्प के समान टेढ़ी-मेढ़ी कुटिलगति करने वाले पुरुष और राष्ट्र । विजंमाना=दूर रहने वाली, सावधान रहने वाली । विमृग्वरी=विशेष रूप से शुद्ध, निर्मल करने वाली, विशेष रूप से अन्वेषणीय । यस्याम्=जिस पर या जिसमें । आसन् उपस्थित हैं । अग्नयः=अग्नि, विद्युत्, माता-पिता, आचार्य आदि पवित्र करने वाले । अप्स्वन्तः=(अप्सु+अन्तः) जल में निवास करने वाली, मनुष्य समाज में निवास करने वाले । परा=दूर । दस्यून्=दस्यु, चोर, डाकू, दूसरों के परिश्रम पर जीने वाले (Parasite) परजीवी । ददती=दूर करने वाली । देवपीयून्=देव चरित्र नागरिकों की हिंसा करने वाले । इन्द्रं=ऐश्वर्यशाली नागरिक और राजा । वृणाना=वरण करने वाली । पृथिवी=विस्तारशाली भूमिमाता । न=नहीं । वृत्रम्=शुभ गुणों पर पर्दा डालने वाले । शक्राय=शक्तिशाली राजा और नागरिक । दध्रे=धारण करती है । वृषभाय=श्रेष्ठ राजा और नागरिक के लिए । वृष्णे=अपने दायित्व, गुण, सामर्थ्य से दूसरों को लाभ पहुँचाने वाली ।

विमर्श–मंत्र में प्रथम बात यह कही गयी है कि हमारी भूमिमाता, हमारी मातृभूमि शुद्ध करने वाली, हमारे चरित्र और जीवन को निर्मल करने वाली है । राष्ट्र के निवासियों में जब मातृभूमि के प्रति प्रेम और त्याग की भावना का उदय हो जाता है तो देश के निवासियों का चरित्र निर्मल हो जाता है । उनमें परस्पर भाई-भाई की तरह अपने राष्ट्र के

प्रति मातृभूमि की भावना से भाई चारे के कारण परस्पर चरित्र में निर्मलता का भाव आ जाता है, कोई किसी को न ठगता है, न दूसरों के प्रति प्रवञ्चना करता है। यह है मातृभूमि का राष्ट्र निवासियों के जीवन और चरित्र को पवित्र करने की भावना।

हमारी मातृभूमि विमृग्वरी है। अर्थात् नये-नये आविष्कारों के अन्वेषण में प्रवृत्त रहने का नागरिकों का स्वभाव। अन्वेषण के भी दो रूप हैं। एक तो हमारी भूमिमाता के ऊपर और भू-गर्भ में हमारे लिए, और हमारे समाज के लिए कहाँ क्या उपयोगी मनुष्य एवं पदार्थ हैं, अथवा कहाँ क्या उपयोगी सम्भावना बनती है, उसका अन्वेषण करते रहना और दूसरा रूप है कि भूमिमाता के उपादानों से विभिन्न प्रकार के भूगोलीय तथा वैज्ञानिक अनुसंधानों में सचेष्ट रहना। इस प्रकार मातृभूमि अपने नागरिकों को अन्वेषणप्रिय बनाती है।

मंत्र में यह कहा गया है कि हमारी मातृभूमि सर्प प्रकृति के लोगों से दूर रहने वाली है। मंत्र में ''अपविजमाना'' पद का प्रयोग हुआ है। जिसका भाव यह है—''अपविजमाना। ओविजी भयचलनयोः। सर्पप्रकृतिकेभ्यः पुरुषेभ्यो दूरं चलन्ती।''

सर्प प्रकृति के दुष्ट, कुटिल, जहरीले लोग भी होते हैं और राष्ट्र भी होते हैं। आन्तरिक रूप से राष्ट्र की शिक्षा-दीक्षा और व्यवस्था न्याय और शासन ऐसे आदर्श रूप में हों कि हमारे नागरिक कुटिल प्रवृत्ति के न हों और यदि कोई सर्प की तरह कुटिल हो ही जाय तो दण्ड व्यवस्था उसे निर्मल बना दे।

मंत्र में कहा गया है कि हमारे जल में नदी, प्रपात आदि में जो विद्युत है, हम उसका सदुपयोग करके राष्ट्र को कल-कारखाना और घरलू उपयोग के योग्य सदा बनाते रहें।

ऋषि के ग्रन्थों में वर्णन है कि माता-पिता, आचार्य, वृद्ध लोग हमारे जीवन को अग्नि की तरह शुद्ध पवित्र बनाते रहें-

''पिता वै गार्हपत्योग्निर्मातोग्निर्दक्षिणः स्मृतः
गुरुराहवनीयस्तु साग्नित्रेता गरीयसी।''

मंत्र में कहा गया है कि हमारी मातृभूमि दस्यु और देवपीयु लोगों को अपने से दूर रखती है । दस्यु तो चोर, डाकू, लुटेरे, निर्बल, असहायों का शोषण करने वाले परजीवी (Parasite) होते ही हैं । हमारी मातृभूमि ऐसे लोगों को अपने से दूर रखती है ।

देवपीयु लोगों को भी अपने से दूर रखती है । देवपीयु वे लोग हैं जो सज्जन पुरूषों को कष्ट देते हैं, उन्हें सताते हैं ''देवपीयुः=देव-प्रकृतिकानां साधुपुरुषाणां हिंसकः पीडयिता ।''

मंत्र में कहा गया है कि हमारी मातृभूमि ''इन्द्रं वृणाना न वृत्रम्'' अर्थात् हमारी मातृभूमि इन्द्र की तरह ऐश्वर्यशाली, राजा और प्रजा का वरण करने वाली है और जो वृत्र प्रकृति के लोग हैं उन्हें वरण नहीं करती है । ''इन्द्रं वृणाना' का एक भाव यह भी है कि हमारी मातृभूमि राजा का चुनाव करती है—

''त्वां विशो वृणतां राज्याय'' (अथर्व ३/४/२) अर्थात् ''हे राजन् ! प्रजायें राज्य करने के लिए तुम्हारा चुनाव करें ।''

मंत्र में यह बात कही गयी है कि हमारी मातृभूमि जो शक्र है, अनेक प्रकार के कार्यों को करने में समर्थ है उसे धारण करती है (शक्नोति विविध कर्माणि) । हमारा राष्ट्र जो वृषभ है, बलवान है उनको धारण करती है । मातृभूमि वृषा को धारण करती है, वृषा का अर्थ हुआ कि जो अपनी शक्तियों का परोपकार के लिए वर्षण कर दे । कुछ लोग अपनी शक्ति अपना ज्ञान दूसरों को बाँटते नहीं । उन्हें डर लगता है कि दूसरे लोग भी हमारी तरह प्रतिष्ठा पा जाएँगे । वृषा वे लोग हैं जो अपने गुणों से दूसरों का उपकार करते हैं । हमारी मातृभूमि ऐसे परोपकारी लोगों को धारण करती है अर्थात् हमारी मातृभूमि के लोग परोपकारी प्रवृत्ति के होते हैं ।

विशेष विचार

इस प्रसंग में मंत्र ३५, ३६ और ३७ एक ही प्रकार की भावना को बड़े विस्तार से प्रकट कर रहे हैं । मातृभूमि के प्रति प्रकट की गयी भावनाओं से यह प्रकट होता है कि ये तीनों मंत्र समान रूप

की भावना को केन्द्र करके एक परिधि बना रहे हैं । ३५वें मंत्र में और ३७ वें मंत्र में विमृग्वरी शब्द ही आया है । ३५ वाँ मंत्र कृषि, नहर, सरोवर, तालाब आदि के लिए खोदने आदि की बात करता है और मातृभूमि से प्रार्थना करता है कि हम मातृभूमि को हिंसित न करें । भू-गर्भ से खनिज पदार्थों को निकालने के लिए भी मातृभूमि के वक्ष को खोदना पड़ता है । चाहे खनिजों के लिए या कृषि के लिए अथवा नहर सरोवर आदि के लिए सिंचाई के साधनों के लिए खोदें तो अवश्य ही, किन्तु मातृभूमि की हिंसा न हो और इसकी उर्वरक शक्ति नष्ट न होने पाये साथ ही शीघ्र ही हमारी भूमि उर्वरा शक्ति को प्राप्त कर लें ।

३६ वें मंत्र में ऋतु चक्रों का वर्णन है । किसी भूखण्ड में ६ ऋतुओं का होना अति विरल है, किन्तु हमारी मातृभूमि के फल, मूल, अन्न, औषधि, वनस्पति दोहन सम्पूर्ण वर्ष होता रहे और भूमिमाता हमें इस दोहन का सौभाग्य देती रहे ।

३७ वें मंत्र में थोड़ा विस्तार से बात कही गयी है । भूमिमाता कुटिलवृत्ति के सर्प जैसे दुष्ट मनुष्यों से, चोर से, डाकू शोषण करने वाले लोगों से बचाती रहे । हमारे राष्ट्र में जल में विद्युत अथवा माता-पिता आचार्य आदि देववृत्ति के लोगों की रक्षा के लिए शक्तिशाली और प्रजा पर सुख और शान्ति की वर्षा करने वाले शक्तिशाली राजा का वरण करें ।

इस प्रकार तीनों मंत्रों में सुख-शान्ति, पृथ्वी की रक्षा और देववृत्तियों की रक्षा का वर्णन किया गया है ।

*

मंत्र– ३८

'यस्यां सदोहविर्धाने यूपो यस्यां निमीयते ।
ब्रह्माणो यस्मामर्चन्त्यृग्भिः साम्ना यजुर्विदः ।
युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातवे ।'

पदार्थः–

यस्माम्=जिस पर , जिसमें । सदः=घर, सभा मण्डप, यज्ञ आदि कार्यों के स्थल । हविर्धाने=हवि, समान रखने की जगह । यूपः स्तम्भ, यज्ञ स्तम्भ, घर का स्तम्भ (Pillar) । निमीयते=निश्चित रूप से नाप-जोखकर बनाया जाता है । ब्रह्माणः=जानकार विद्वान् । अर्चन्ति=अर्चना करते हैं । ऋग्भिः=ऋचाओं के द्वारा, ज्ञान की सहायता से । साम्ना=सामवेद के मंत्रों के द्वारा, उपासना भक्ति के द्वारा । यजुर्विदः=यजुर्वेद के मंत्रों के जानने वाले या कर्मकाण्ड के ज्ञाता । युज्यन्ते=यज्ञ आदि कर्मों में नियुक्त होते हैं । ऋत्विजः=ऋतु के अनुसार यज्ञ आदि काम करने वाले लोग । सोमम्=सुख शान्ति देने वाला पेय । इन्द्राय=परमेश्वर्यशाली, शत्रुओं के विनाश करने वाले लोग या राजा । पातवे=पीने के लिए, सेवन करने के लिए ।

विमर्श–इस मंत्र में एक सुख-शान्ति, सुव्यवस्था से संयुक्त आदर्श राष्ट्र की आदर्शमयी मातृभूमि का वर्णन है ।

मंत्र में वर्णित विषय-वस्तु पर विचार करने से पूर्व यह समझ लेना आवश्यक है कि आदर्श राष्ट्र में, आदर्श मातृभूमि में ज्ञान, कर्म और उपासना तथा विज्ञान अति आवश्यक है । ऋग् ज्ञानकाण्ड, यजुः कर्मकाण्ड, साम भक्ति उपासना काण्ड और अथर्व विज्ञान काण्ड है ।

आदर्श राष्ट्र में ज्ञान-विज्ञान की व्यवस्था और उनकी शिक्षा-दीक्षा के लिए विद्यालय विश्व-विद्यालय, और प्रयोगशालाएँ अपेक्षित हैं। कर्मकाण्ड के लिए यज्ञशाला से अतिरिक्त कल-कारखाने, फैक्ट्री आदि अपेक्षित हैं। साथ ही आध्यात्मिक शान्ति और मानसिक शान्ति के लिए साधना स्थल आवश्यक हैं। ऋग् का अर्थ ज्ञान है। यजुः का अर्थ कर्म है, साम का अर्थ भक्ति और उपासना है तथा अथर्व का अर्थ विज्ञान है।

इस मौलिक विचार विमर्श के पश्चात् हम मूल मंत्र पर विचार करते हैं।

मंत्र में सर्वप्रथम यह बताया गया है कि एक आदर्श राष्ट्र में घर, कारखाने, प्रयोगशालाएँ, विद्यालय विश्वविद्यालय सभी अच्छी तरह नाप कर आवश्यकता के अनुसार बनाये जाते हैं। इन घरों को, मण्डपों को बनाने के लिए स्तूप खम्भे (Pillar) आदि नाप के साथ बनाये जाते हैं। इनमें यज्ञ की, राष्ट्र की, कल-कारखानों की वस्तुएं रखी जाती हैं। इन्हीं घरों में (वेद की भाषा में यज्ञ स्थलों में) शिक्षा-दीक्षा, ज्ञान-विज्ञान और प्रयोगशालाएँ सभी चलती हैं। ये ज्ञान प्रचार के केन्द्र होते हैं, कुछ उत्पादन के केन्द्र होते हैं और कुछ वैज्ञानिक प्रयोगों के केन्द्र होते है।

इन्हीं गृहों में ज्ञान के ज्ञाता शिक्षा भी देते हैं और प्रयोग की विधियां भी बताते हैं। इन्हीं अच्छी प्रकार नापकर बनाये हुए घरों में कारखाने, फैक्ट्रियाँ और उद्योग चलते हैं।

मंत्र में यह भी समझ में आता है कि मनुष्यों और पशुओं के लिए रहने की शालाएँ भी अच्छी प्रकार नापकर बनायी जाती हैं। इन शालाओं में स्वास्थ्य, शान्ति और सुख की प्राप्ति का उद्देश्य होता है। ये आज की तरह लाभ से प्रेरित बहुमंजिले (Multistoried) कम अवकाश और कम हवा, प्रकाश देने वाले घरों की तरह नहीं होते।

इनमें स्वास्थ्य, साधना सबका ध्यान रखा जाता है ।

मंत्र में यह भी कहा गया है कि कार्य करने वाले ऋतु विज्ञान के जानकर होते हैं और वे सारे क्रिया-कलाप को इस तरह सम्पन्न करते है कि मनुष्य में क्रियाशीलता दक्षता सब सुरक्षित बनी रहे ।

मंत्र में कहा गया है ''सोममिन्द्रांय पातवे'' । इस शब्दावली का अर्थ है कि इन्द्र परमेश्वर्यशाली, शत्रुओं पर सदा विजेता, परमेश्वर के भक्त, ऐश्वर्यशाली इन्द्र, मनुष्य, उपासना और आनन्द एवं शान्ति प्राप्त करने के लिए भगवान् का भजन करते हैं, जिससे उसके शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकार नष्ट हो जाते हैं और वे प्रभु भक्ति का सोम रस पीने में समर्थ हो जाते हैं ।

*

मंत्र–३९

'यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदानृचुः ।
सप्त सत्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह ।।'

पदार्थः–

यस्माम्=जिस भूमि पर । पूर्वे=पालन और पूरण करने वाले (पृ-पालन पूरणयोः), पूर्व काल के । भूतकृतः=भूतकाल का, हमारी मातृभूमि के इतिहास का निर्माण करने वाले । ऋषयः=तत्वदर्शी ज्ञानी ऋषि लोग । गाः=वाणी, अन्न, गंऊ, पृथ्वी आदि । उदानृचुः= स्तुति, गुणगान इत्यादि करते रहे हैं (ऋच् स्तुतौ) । सप्त=सात, विविध । सत्रेण=सतां सत्पुरुषाणां त्रायकेण पालकेन (सत्+त्रैङ पालने क प्रत्ययः) । वेधसः=ज्ञानी लोग, नया नया आविष्कार करने वाले (विदधाति इति) । वेधाः=विविध रचनाओं में चतुर लोग, आविष्कारक । यज्ञेन=यज्ञ के द्वारा । तपसा=तप के साथ । सह=साथ ।

विमर्श–इस मंत्र में एक बात यह कही गयी है कि हमारे राष्ट्र में राष्ट्र को सम्पन्न आदर्श बनाने वाले तत्व - द्रष्टा ऋषि लोग विद्वान् और आविष्कार करने वाले लोग अपने इतिहास का निर्माण करते रहे हैं । वे अपने राष्ट्र का, राष्ट्र की सम्पदा का सदा पालन-पोषण करते रहे हैं । हमारे राष्ट्र को कभी किसी दूसरे राष्ट्र का मुँह नहीं ताकना पड़ा है, किसी के सामने सहायता के लिए झोली नहीं फैलानी पड़ी है । राष्ट्र के निर्माण के लिए वे सचमुच "भूतकृतः" थे । उन्होंने राष्ट्र की आवश्यकताओं को सदा पूर्ण किया है । हमारे पूर्व कृतः तत्वदर्शी ऋषि लोग हो चुके हैं, वे सदा सत्पुरुषों का पालन-पोषण करते रहे हैं। वे सप्त होता ऋषि लोग थे । "येन यज्ञस्त्रायते सप्तहोता (यजु८ ३४/ ४)" यह हमारे तत्व वेत्ता ऋषि लोग पाँचों ज्ञान इन्द्रियां आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा, मन एवं आत्मा सबका संयम, तप करते थे ।

ये स्वयं उच्छृंखल जीवन न स्वयं बिताते थे न राष्ट्र के नागरिकों को अनुशासनहीन और संयमहीन होने देते थे । इनका जीवन यज्ञ और तप से भरा रहता था और ये सारे राष्ट्र को यज्ञमय एवं तपस्वी बनाये रखते थे ।

विविध प्रकार के ज्ञान-विज्ञान, आध्यात्मिक तत्व और भौतिक विज्ञान अन्वेषण करने वाले सदा नये-नये प्रयोगों के द्वारा भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति करते रहते थे ।

यज्ञ बड़ा व्यापक शब्द है, तप भी बड़ा व्यापक है । यज्ञ में दैनिक अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध यज्ञ पर्यन्त, सभी यज्ञ तो आते ही हैं , साथ ही कला, कौशल, उद्योग-व्यवसाय, कल-कारखाने सभी यज्ञ में सम्मिलित है । स्वामी दयानन्द जी ने यज्ञ की यह व्यापक व्याख्या करके याज्ञिक जगत् में बड़ी भारी क्रान्ति की है ।

वेधा शब्द इस तथ्य को उद्घाटित करता है कि हमारे विद्वान् लोग नये-नये आविष्कारों को करते रहे हैं । इन आविष्कारों में भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार के आविष्कार, सप्तहोता यज्ञ चलता रहा है।

हमारे विद्वान् लोग राष्ट्र की गौ का गुण-गान, उसकी प्रशंसा करते रहे हैं । गौ शब्द वाणी, पृथ्वी, अन्न आदि कई अर्थों को प्रकट करता है । जिसका भाव यह है कि ऋषि लोग अपनी कृषि, अन्न, फल, मूल आदि को प्रशंसनीय बनाये रखते थे । ये विद्वान् राष्ट की विद्या और साहित्य सम्पदा का उन्नत आदर्श बनाये रखते थे ।

इस मंत्र के वर्णन द्वारा वेद ने हमारे लिए, हमारे राष्ट्र के भूत, भविष्य और वर्तमान को गौरवशाली, उन्नतिशील और आदर्श बनाये रखने के लिए हममें और हमारे विद्वानों में, हमारे राष्ट के नागरिकों में सदा तप, परिश्रमशीलता, उद्यमी स्वभाव बनाये रखने का निर्देश किया है । राष्ट्र में विलास, आरामतलबी, जीवन का पतन, चरित्र का पतन न आने पावे । हमारा राष्ट्र तपस्यामय हो । हमारे राष्ट्र में ऐसी शिक्षा-दीक्षा, राज्य व्यवस्था बनी रहे कि हमारे राष्ट्र में नये-नये आविष्कारों को प्रश्रय मिलता रहे । *

मंत्र–४०

'सा नो भूमिरादिशतु यद्धनं कामयामहे ।
भगो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्र एतु पुरोगवः ।।'

पदार्थः–

सा=वह (पिछले मंत्र में वर्णित यज्ञों, तपों, ऋषियों और आविष्कारों वाली भूमि) । नः=हमारे लिए । भूमिः=मातृभूमि । आदिशतु=हमें चारों ओर से प्रदान करें । यत्=जिस, जैसे । धनम्=धन । कामयामहे= कामना करे । भगः=भजनीय, सेवनीय । अनुप्रयुङ्क्ताम्=हमें शिक्षित-दीक्षित करे, प्रयोग विधि बताये (To give instruction प्रयुङ्क्ते) । इन्द्र=ऐश्वर्यशाली राजा, परमेश्वर । एतु=चले । पुरोगवः=मार्ग दर्शक, आगे चलने वाला, नेता (गम्लृ गमने) ।

विमर्श–इस सूक्त का ४०वाँ मंत्र यद्यपि स्वतंत्र अलग मंत्र है, किन्तु मंत्र में ही ३९ वें मंत्र का संदर्भ लिखा हुआ है–"सा नो भूमिः"–हमारे लिए वह भूमि जिसका वर्णन ३९ वें मंत्र में किया गया है ।

इस मंत्र में प्रथम यह बात कही गयी है कि हम जिस भी धन की कामना करें, हमारी मातृभूमि उस धन को हमें सब प्रकार से प्रदान करा दे । राष्ट्र के नागरिक सब प्रकार की उन्नति की कामना करेंगे । राष्ट्र को भौतिक सम्पदा चाहिए, उन्नति, पर्याप्त, आवश्यकता से अधिक अन्न, वस्त्र, आवास आदि आलम्बन पदार्थ मिलने चाहिएं । उससे भी पहले पीने और सिंचाई आदि के लिए स्वच्छ, सुन्दर, स्वास्थ्यदायक जल चाहिए । औद्योगिक विकास, कल-कारखाने, व्यापार, व्यवसाय, रोजगार आदि पर्याप्त होना चाहिए । शिक्षा-दीक्षा,

प्रयोगशाला, तकनीकी, संस्थायें, वैज्ञानिक आविष्कार सभी कुछ राष्ट्र की कामना के भीतर समाए हुए हैं। मंत्र में मातृभूमि से यही कामना की गयी है कि हम जो चाहें वह सब हमको प्राप्त हो।

पूर्व मंत्र में ऋषि, विविध प्रकार के ज्ञानी-विज्ञानी तत्व-द्रष्टा लोगों का वर्णन है, साथ ही तपस्या, परिश्रम (Hard Working) की आवश्यकता बतायी गयी है। हमारा राष्ट्र विलास और वासनाओं से बचे। हमारे नागरिक सदाचारी और तपस्वी हों।

इस प्रकार मंत्र में मातृभूमि से यह कामना की गयी कि हमारे देश की व्यवस्था, यज्ञ, समन्वय, सामञ्जस्य से परिपूर्ण समाज का निर्माण करने वाली हो। हमारे समाज में समन्वय सामञ्जस्य के साथ तप, परिश्रम हो जिससे हम अपने वांछित धन ऐश्वर्य को प्राप्त कर सकें।

मंत्र में अगली बात यह कही गयी है कि हमारे देश का शासक, इन्द्र, शत्रु-विजेता हो और हमें ऐसे कामों में प्रायोजित (प्रेरित,) करे जिससे हम ऐश्वर्यशाली बनें। हमारा नेता, अगुआ, अग्रगन्ता (पुरोगवः) ऐसा हो जो हमें सत्य, ईमान के साथ सामाजिक और राजनीतिक कार्यों में इस प्रकार प्रायोजित करे कि हमारे समाज के सभी वर्गों में समन्वय सामञ्जस्य बना रहे और हम अपने राष्ट्र की सब प्रकार से धन, विद्या, विज्ञान, सेनाबल सबकी उन्नति करें। हमारे कृषक व्यवसायी, कल-कारखानों में उत्पादक, राजनीति और समाजनीति में लगे लोग, शासन, व्यवस्था और न्याय (Law & Order) में लगे हुए लोग, सबमें यज्ञ की भावना—सहयोग समन्वय सामञ्जस्य से राष्ट्र की उन्नति करें। हमारे राष्ट्र में वर्ग-संघर्ष (Class struggle) कभी न हो, सदा सहयोग, समन्वय, परस्पर सहानुभूति, यज्ञ की भावना बनी रहे।

मंत्र में एक भाव यह भी झलकता है कि हमारे नेता अग्रगन्ता स्वयं प्रभु परमेश्वर हों। इसका भाव यह है कि हम व्यक्तिगत रूप में,

सामाजिक और राष्ट्रीय रूप में कभी ऐसी नीति न अपनावें जो परमेश्वर अर्थात् प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करता हो। हम पर्यावरण को दूषित न करें और अपने राष्ट्रीय स्वार्थ, धन-सम्पदा के लिए प्रकृति का अति-दोहन न करें।

विशेष विचार

मंत्र ३९ और ४० का एक समुदाय है। हमने ४० वें मंत्र में ३९ वें मंत्र का संदर्भ उल्लिखित है, ऐसा संकेत दिया है। ३९ वाँ मंत्र भूत भविष्यत् वर्तमान का निर्माण करने वाले तत्वद्रष्टा ऋषियों, आविष्कार करने वाले विविध प्रकार के ज्ञान-विज्ञान में लगे सप्त सत्र के सप्तहोता आविष्कारक ज्ञानी-विज्ञानी तपस्वियों का वर्णन करता है और परिश्रमशीलता की महिमा बताता है। ४०वें मंत्र में इसी बात को आगे बढ़ाया गया है कि राष्ट्र के नेता, मार्गदर्शक, शासक, राजा ऐसे चरित्र वाले हों जो हमारे राष्ट्र की, हमारी भावनाओं के अनुकूल यथेष्ट उन्नति एवं समृद्धि करें।

*

मंत्र–४१

'यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्याव्यैलबाः ।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः ।
सा नो भूमिः प्र णुदतां सपत्नानसपत्नं मा पृथ्वी कृणोतु ।।'

पदार्थः–

यस्याम्=जिस पर । गायन्ति=गाते हैं, गान करते हैं । नृत्यन्ति= नाचते हैं या नाच करते हैं । भूम्यां=मातृभूमि, जन्मभूमि पर । मर्त्याः= मरणधर्मा मनुष्य लोग । व्यैलबाः=विविध प्रकार की वाणियों में बोलने वाले लोग (इलावाक्, विविधानाम् इलानां समूहः व्यैलः ।) युध्यन्ते=युद्ध करते हैं (शत्रुओं, आक्रमण कारियों से) । आक्रन्दः=ललकारना, घोष करना, युद्ध में तड़पना । वदति=बजता है । दिन्दुभिः=युद्ध का नगाड़ा । सा=वह । नः हमारे । भूमिः=भूमिमाता । प्रणुदतां=दूर ढकलने, फैंकने वाली । सपत्नां=शत्रुओं को । असपत्नं=शत्रु रहित । मा= हमलोगों को । पृथिवी=मातृभूमि । कृणोतु=करे ।

विमर्श–इस मंत्र में दो सर्वथा अलग-अलग परिस्थितियों का वर्णन है । एक परिस्थिति हर्ष और उल्लास की है जिसमें देश के निवासी गाते, नाचते हैं, मृदंग और दुन्दुभि आदि बाजे बजाते हैं । यह शान्ति, सुव्यवस्था, निश्चन्तता, निर्भयता की स्थिति है । इस स्थिति में न बाहर के शत्रुओं का आक्रमण सम्भव होता है और न आन्तरिक रूप से कोई लूट-पाट, दंगा-फसाद, बाढ़-बूड़ा, सूखा, अकाल आदि किसी भी परिस्थिति से राष्ट्र सम्मुखीन हुआ है । ऐसी परिस्थितियों में भी राष्ट्र का नागरिक अपनी मातृभूमि से यह आकांक्षा रखता है कि हमारे राष्ट्र में ऐसी सामाजिक सुव्यवस्था रहे, ऐसी प्रशासनिक

शान्ति सुव्यवस्था रहे कि राष्ट्र के नागरिक हर्ष, उल्लास, आनन्द के माहौल का अनुभव करें और उत्सव उल्लास मनावें ।

आन्तरिक रूप से सामाजिक और प्रशासनिक सुव्यवस्था तथा बाढ़-बूढ़ा, आंधी, तूफान, अग्नि आदि से सुरक्षा बनी रहे । इसके साथ ही कृषि, वाणिज्य, उत्पादन, विभिन्न वर्गों में समन्वय सामञ्जस्य का भाव भी बना रहे । आन्तरिक रूप से आनन्द, उल्लास, गाना, बजाना, तब सम्भव होता है जब हमारी पुलिस न्याय, शासन सेना आदि ठीक हो ।

हम आन्तरिक रूप से अपनी सैन्य शक्ति, सुरक्षा, सामग्री, जल, स्थल और आकाश के परिवहन तथा सब प्रकार के आयुध, उपकरण से सुसज्जित हों ताकि विदेशी शत्रु हमारी ओर आँख उठाकर कुदृष्टि से घूरने का भी साहस न कर सके । विदेशी शत्रुओं को यह सुनिश्चय बना रहे कि यदि इस राष्ट्र की ओर आँख उठाने का दुःसाहस भी किया गया तो यह इतना सबल राष्ट्र है कि यह अपने किसी भी शत्रु की घूरती आँख को तो फोड़ ही देगा तथा हाथ-पाँव तोड़कर अपने शत्रुओं को राष्ट्रीय रूप से अपाहिज कर देगा ।

मंत्र में ऐसी परिस्थिति का भी वर्णन है कि जिसमें शत्रुओं के साथ युद्ध करना पड़ता है । यदि कभी शत्रु हमारे राष्ट्र पर आक्रमण करे तो हमारे देश के सैनिक युद्ध के बाजे, नगाड़ा, दुन्दुभि और शंख आदि बजाकर ऐसा ललकारें कि हमारी मातृभूमि हमारे शत्रुओं को, आक्रमण करने वाले विदेशियों को ऐसा पीछे ढकेल दें कि हमारा राष्ट्र सब प्रकार से शत्रुओं को खदेड़ कर उन्हें अपने देश में भाग जाने के लिए बाधित कर दें । मंत्र कहता है कि हमारा राष्ट्र विस्तृत (पथिवी, पृथु विस्तारे) विशाल आयतन वाला, अपनी सुरक्षा, सुव्यवस्था में सदा समर्थ बना रहे ।

यह मंत्र यह शिक्षा दे रहा है कि हमारी मातृभूमि की सामाजिक,

प्रशासनिक सुव्यवस्था, कृषि, उद्योग, व्यवसाय की बहुलता हर्ष और उल्लास को सदा बनाये रखे और हमारा राष्ट्र आनन्द, उत्सव, नृत्य, गान, वादन का आनन्द उठाता रहे। यदि कभी युद्ध का समय आवे तो हम ललकार कर अपने शत्रुओं को अपनी मातृभूमि से बाहर ढकेल दें और हमारी मातृभूमि सदा शत्रुरहित बनी रहे जिससे हम युद्धों को जीतकर, शत्रुओं को पराजित करके नृत्य, गान, वाद्य के हर्ष और उल्लास का वातावरण बनाये रखने में समर्थ बने रहें।

*

मंत्र–४२

**'यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः ।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे ।।'**

पदार्थः–

यस्याम्=जिस मातृभूमि पर । अन्नम्=अन्न, खाने-पीने की सामग्री । व्रीहियवौ=चावल, जौ, गेहूँ आदि (उपलक्षण से सभी प्रकार के अन्न, मूल, फल, कन्द आदि) । यस्याः=जिस मातृभूमि के । इमाः=ये । पञ्च=पांच । कृष्टयः=निवासी मनुष्य (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और वर्ण से बाहर निषाद आदि, अथवा विद्वान्, शूरवीर, व्यवसायी, व्यापारी, श्रमिक, कारीगर और सेवक आदि) । भूम्यै=भूमि के लिए । पर्जन्यपत्न्यै=मेघ की पत्नी रूप में पालित पोषित पृथिवी । नमः= नमस्कार, आदर । अस्तु=होवे । वर्षमेदसे=वृष्टि रूपी स्नेह वाली में, वर्षा के जल से हरी-भरी ।

विमर्श–संसार में जितने भी प्राणी हैं सबको खाद्य पदार्थ, खाने का अन्न आदि चाहिए । मनुष्य समाज को भी प्राणप्रद वायु और स्वच्छ स्वास्थ्यकर जल के पश्चात् अन्न की ही आवश्यकता होती है । अन्न का अर्थ ही होता है 'अत्तीति अन्नम्' अर्थात् जो खाया जाये वह अन्न है । मंत्र में ब्रीहि और यव का वर्णन है । व्रीहि कहते हैं धान को और यव को जौ कहते हैं । धान बरसात की फसल का उपलक्षण है । मूंग, उड़द, तिल आदि सब बरसात के अन्न हैं । धान इन सब अन्नों और वर्षा में होने वाले कन्द, मूल का उपलक्षण है । जौ गर्मी की फसल है । यह गेहूं, मसूर, अरहर, सरसों आदि ग्रीष्म के अन्नों का उपलक्षण है । इस प्रकार व्रीहि और यव सम्पूर्ण वर्षों का जो भी उत्पादन है सबको ग्रहण कर रहा है ।

मनुष्य समाज में प्राणियों के पालन-पोषण के लिए प्रथम आवश्यकता

अन्न उत्पादन की है, पश्चात् उद्योग, व्यवसाय, कल-कारखाने सभी आवश्यक हैं किन्तु कृषि का महत्व सबसे अधिक है ।

कृषि का काम करने के लिए समाज के सभी वर्गों की आवश्यकता है । ब्राह्मण या क्षत्रिय, व्यवसायी हो या सेवक, अथवा इन सब के अतिरिक्त किसी और वर्ग का हो, सबको पृथिवी अपनी सन्तान के रूप में पालती है और सबको अपने-अपने क्षेत्र में अन्न के उत्पादन में चेष्टा करनी चाहिए । सभी वर्ग के लोग अपने-अपने ढंग से कृषि में सहयोग करते हैं, सभी कृषि की उन्नति पर विशेष ध्यान देते हैं । इसीलिए इन सबको कृष्टि कहा गया है ।

भूमि को 'पर्जन्यपत्नी' कहा गया है । पर्जन्य का अर्थ मेघ अर्थात् बादल जो पृथिवी का पालन करता है । मेघ की वृष्टि से पृथिवी की उर्वरकता का पालन-पोषण होता है । मेघ इसीलिए पृथिवी का पालन-पोषण करने वाला है, तभी पृथिवी को पर्जन्यपत्नी कहा गया है । **'पर्जन्यः मेघः पतिः पालकः यस्याः सा पर्जन्यपत्नी तस्यै पर्जन्यपत्न्य ।'** भाव यह हुआ कि मेघ पृथिवी का पालन-पोषण करता है । बादलों की वृष्टि से भूमि ऊसर, बंजर, अनुपजाऊ नहीं होने पाती, इसीलिए उपजाऊ भूमि से हमें अन्न प्राप्त होता है और हम भूमिमाता को नमस्कार करते हैं ।

भूमिमाता को **'वर्षमेदाः'** कहा गया है । इसका अर्थ यह है कि बादलों की वृष्टि से भूमिमाता साल भर हरी-भरी बनी रहती है —

'वर्षेण वर्षया मेद्यति स्निह्यति इति वर्षमेदाः तस्यै वर्षमेदसे'

इस वर्षमेदसा शब्दावली में एक विशेष बात यह है कि साल भर पृथिवी हरी-भरी रहती है, उचित मात्रा में वृष्टि होती है । न कभी सूखा पड़ता है और न ही बाढ़-बूड़ासे राष्ट्र में विपत्ति आती है ।

यह वर्णन यह सुस्पष्ट करता है कि राष्ट्र की व्यवस्था इस प्रकार हो रही है कि राष्ट्र में सम्पूर्ण वर्ष सुख-दायक स्थिति बनी रहती है। राष्ट्र में खाद्यान्न प्रचुर मात्रा में होता है और हम अपनी प्यारी मातृभूमि को नमस्कार करते हैं "वन्दे मातरम्" ।



मंत्र–४३

यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या विकुर्वते ।

प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भामाशामाशां रण्यां नः कृणोतु ।।'

पदार्थः–

यस्याः=जिस पृथिवी के । पुरः=नगर । देवकृताः=दिव्य गुण वाले शिल्पियों द्वारा निर्मित । क्षेत्रे=क्षेत्र में । यस्या=जिसके । विकुर्वते= विशेष रूप से कार्यरत होते हैं । प्रजापतिः=परमेश्वर, प्रजाओं का पालन करने वाला राजा । पृथिवीं=पृथिवी को । विश्वगर्भाम्=जिसके गर्भ में सब प्रकार के पदार्थ हैं । आशाम् आशाम्=प्रत्येक दिशा में । रण्यां=रमणीय । नः=हमारे लिए । कृणोतु=करे, बनावे ।

विमर्श–मंत्र में यह कहा है कि हमारी मातृभूमि में बड़े-बड़े नगर बसे हुए हैं । ये सभी नगर दिव्य गुणों से विशिष्ट कारीगरों द्वारा निर्मित किये गये हैं । ये नगर (Well planned) योजना बद्ध बसे हैं इन्हें बसाने वाले शिल्पी अच्छी तरह विशेषताओं से सम्पन्न हैं (Technicians are well qualified) । प्रायः नगर बिना किसी योजना के घरों के समूह के रूप में बस जाते हैं । ऐसे नगरों में न सुव्यवस्थित मार्ग होते हैं न अच्छी तरह वायु-प्रकाश का आवागमन होता है और न ही पीने के पानी की सुव्यवस्था होती है । नगरों में पानी की आपूर्ति और पानी की निकासी दोनों ही ठीक तरह से नहीं हो पाती । जिनको अच्छे देवगुण विशिष्ट शिल्पियों ने निर्मित किया है, उनमें आवागमन के मार्ग, प्रत्येक घर में वायु और प्रकाश की प्रचुरता आदि का ध्यान रखा जाता है । नगर बसाने का उद्देश्य स्वास्थ्य और समाज की सुव्यवस्था में है, आज की तरह बहुतलीय (Multistoried) कबूतर

खानों की तरह केवल रूपया कमाने के लिए नहीं बनाये गये हैं । आज के लोभी व्यवसायियों के बसाये नगर नहीं है बल्कि देवगुण वाले जानकार, ज्ञानी, कुशल शिल्पियों द्वारा बसाये गये हैं । इनमें स्वास्थ्य सुरक्षा आदि का अच्छी तरह ध्यान रखा गया है ।

हमारी मातृभूमि में खेतों में कृषक लोग विशिष्टता के साथ कृषि के कामों को करते हैं । यह विकुर्वते शब्द का प्रयोग यह भी बताता है कि हमारे खेतों में जोतना, बुआई करना, सिंचाई करना, फसल काटना सबका विशेषता के साथ काम किया जाता है ।

क्षेत्र का अर्थ खेत तो होता ही है, इसका अर्थ भू-प्रदेश भी होता है । आप्टे कोश में क्षेत्र का अर्थ—A field, ground, soil, land etc. दिया हुआ है । इसका अर्थ यह हुआ कि कहीं किसी स्थान पर खेती हो रही है, कहीं उद्योग-धन्धे चल रहे हैं, कहीं व्यवसाय-व्यापार हो रहा है, कहीं विद्यालय महाविद्यालय में ज्ञान का कार्य अध्ययन अध्यापन हो रहा है—यह सब कुछ विकुर्वते शब्द की व्याख्या में समाया हुआ है ।

मंत्र में मातृभूमि को विश्वगर्भा कहा गया है । हमारी मातृभूमि के गर्भ में, इसके अन्दर सभी प्रकार के खनिज द्रव्य विद्यमान हैं । इसमें सोना, चांदी, लोहा, तांबा, त्रपु, जतु, कोयला आदि भरा पड़ा है । हमारी मातृभूमि में सबसे मूल्यवान खनिज पानी है । तेल, हीरे, आदि न जाने क्या-क्या इस विश्वगर्भा में निहित भरे हैं । हमारे राष्ट्र के लोग विश्वगर्भा माता के दूध के समान उपकारी द्रव्यों का दोहन करते हैं । लोभ या लालच में आकर अतिदोहन नहीं करते, माता का दूध पीते हैं, उसके रक्त को नहीं चूसते ।

प्रजापति परमेश्वर ने हमारी मातृभूमि की सब दिशाओं में रमणीय प्राकृतिक दृश्य बनाये हैं ।

प्रजापति राष्ट्र का पालन-पोषण करने वाला राजा या सम्राट् भी

है (रण्यां रमणीयाम्, रण्याः रमणीयः । निरुक्त ६-३३११) हमारे राष्ट्र की व्यवस्था राष्ट्र को प्रत्येक दिशा में रमणीय बनाये रखता है। खेतों में, नगरों में, उद्यानों में, दर्शनीय पर्वत चोटियों को सब ओर से रमणीयता से सजाया हुआ है। हमारे राष्ट्र में प्राकृतिक रमणीयता तो है ही उसी के साथ राष्ट्रपति की सुव्यवस्था में सभी दिशाओं में मनुष्यकृत रमणीयता भी निरन्तर बनी रहती है।

*

मंत्र–४४

'निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे ।
वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना ।।'

पदार्थ:–

निधिम्=खजाना, कोष को । बिभ्रती=धारण करती हुई । बहुधा=बहुत प्रकार के । गुहा=गुहाओं में, गुफाओं में । वसु=धन को । मणिम्=मणियों को । हिरण्यं=सोना-चाँदी आदि को । पृथिवी=भूमिमाता । ददातु=देवे, उपलब्ध करावे । मे=हमार लिए । वसूनि=धनों को । वसुदा:=धनों को देने वाली । रासमाना=धनों को देती हुई । देवी=दिव्य गुणों से भरपूर । दधातु=धारण करे । सुमनस्यमाना=हमारे मनों को सुमन, प्रसन्न करती हुई ।

विमर्श–इस मंत्र में पिछले मंत्र की भावनाओं को प्रकट किया गया है । हे मातृभूमि तू हिरण्यगर्भा है, तू वसुधा है । हे मातृभूमि ! तुम हमारे लिए अनेक प्रकार के सोना-चाँदी, मणि, माणिक्य आदि मूल्यवान् पदार्थों को अपने भीतर धारण किये हुए हो । हे मातृभूमि तुम अपने इस बहुमूल्य कोष से हमें अनेक प्रकार की धन-सम्पत्ति देती रहे । तू सचमुच वसुधा है ।

राष्ट्र कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने मातृभूमि की वन्दना में ठीक ही लिखा है–

'हे मातृभूमि ! वसुधा, धरा ।
तेरे नाम यथार्थ है ।।'

हे हमारी प्यारी मातृभूमि ! तू केवल वसुधा ही नहीं है, तू वसुदा भी है–बहुत प्रकार के वसुओं को, धनों को देने वाली है । हे

भूमिमाता तू रासमाना है, अपने पुत्रों को धन-सम्पत्ति देकर प्रसन्न होने वाली है (रान्ति इति दान कर्मा निघ० ३-२०)। हमारी मातृभूमि सुमनस्यमाना सुमन प्रसन्नचित रहती है।

भाव यह है कि राष्ट्र का राज्य और व्यवसायी मातृभूमि में सुरक्षित हीरे-जवाहरात खनिज द्रव्यों को, पृथिवी में पाये जाने वाले सभी पदार्थों को इस प्रकार प्राप्त करें कि राष्ट्र के सभी निवासी सुसम्पन्न हों और उनमें सुमनस्कता सदा बनी रहे। सभी राष्ट्र के निवासियों में मेल-जोल सदा बना रहे।

विशेष विचार

मंत्र ४३ और ४४ का एक समुदाय लगता है। मंत्र ४३ में भूमिमाता को विश्वगर्भा कहा गया है, जिसके गर्भ में सब प्रकार के मूल्यवान् पदार्थ धारण किये हुए हैं, साथ ही मातृभूमि का चप्पा-चप्पा प्रत्येक दिशा रमणीय है।

मंत्र ४४ में मातृभूमि को वसुदा तथा वसुधा कहा गया है। हमारी भूमिमाता सब प्रकार के धनों को मूल्यवान मणि माणिक्य और खनिजों को धारण करती है तथा मातृभूमि अपनी सन्तानों को यह धन सम्पत्ति दे भी देती है।

मंत्र ४३ में मातृभूमि को प्रत्येक दिशा रमणीय कहा गया है तो मंत्र ४४ में हमारी मातृभूमि स्वयं सुमनस्यमाना है तथा हमको सुमनस्कता देती है।

*

मंत्र–४५

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम् ।
सहस्त्र धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ।।

पदार्थः–

जनम्=लोगों को । बिभ्रती=धारण करती हुई । बहुधा=अनेक प्रकार से । विवाचसम्=विविध प्रकार की बोलियां बोलने वालों को । नाना-धर्माणं=विविध प्रकार के कर्तव्यों को करने वालों को । पृथिवी= भूमिमाता । यथौकसम्=समान प्रकार के घरवालों को । द्रविणस्य=धन-सम्पत्ति की । मे=हमारे लिए । दुहाम्=दुहने वाली को, परिपूरित कर देने वाली को । ध्रुवा=स्थिर—न हिलती-डुलती । इव=तरह । धेनुः=गाय । अनपस्फुरन्ती=न हिलती डोलती, न उछलने-कूदने वाली ।

विमर्श--हमारी मातृभूमि में लाखों क्या, करोड़ों लोग निवास करते हैं । हमारी मातृभूमि ऐसी सम्पन्न है कि सभी लोगों का भरण-पोषण करती है । हमारे देश का कोई भी व्यक्ति स्त्री, पुरुष, भोजन वस्त्र के अभाव में भरण-पोषण से वंचित नहीं होता । हमारी मातृभूमि ''जनम् बिभ्रती'' है । सभी लोगों को धारण करती है, उनका भरण पोषण करती है ।

हमारे देश में अनेक प्रकार की वाणी, बोलियों को बोलने वाले लोग रहते हैं । भाषा तो एक ही संस्कृत है किन्तु बोलियां, उच्चारण विभिन्न जलवायु, विभिन्न स्थानों की बोलियां अलग-अलग हैं । हमारे देश के अनेक प्रकार की भाषाओं को बोलने वाले लोग अनेक प्रकार के कर्तव्यों कार्यों को करते रहते हैं । यहां धर्म का प्रयोग रेलिजन, मजहब, सम्प्रदाय के रूप में नहीं हुआ है । यहाँ धर्म का अर्थ कर्तव्य

और व्यवहार है, यह पंथ सम्प्रदाय, मजहब आदि नही है ।

मंत्र में कहा गया है कि हमारी मातृभूमि अनेक प्रकार की बोलियाँ बोलने वाले, अनेक प्रकार के व्यवहार और कर्तव्य करने वाले लोगों को उसी प्रकार धारण करके रहती है जैसे एक ही घर में रहने वाले अनेक लोग अनेक प्रकार के कामों को करते हुए मिलजुल कर प्रेम से रहते हैं ।

किसी भी राष्ट्र में दर्जनों तरह के कार्य हैं । कुछ लोग कृषि करते हैं तो दूसरे अनेक लोग उद्योग व्यवसाय कारबार में लगे रहते हैं । अनेक लोग अध्ययन अध्यापन, अनुसंधान, आविष्कार करते रहते हैं । कुछ लोग सेना, सुरक्षा, पुलिस, सुव्यवस्था, न्याय आदि के कार्यों में भी जीवन यापन करते हैं । हमारी मातृभूमि ऐसी महिमामयी है कि अनेक प्रकार की बोलियों वाले, अनेक प्रकार के व्यवहारों, कर्त्तव्यों में लगे हुए लोगों को एक घर में रहने वाले परिवार के सदस्यों की तरह प्रेम से भरण-पोषण करती रहती है ।

हमारे राष्ट्र में धन को उत्पन्न करने की हजारों धाराएँ उपलब्ध हैं हमारी भूमिमाता इस प्रकार धन से हमारे राष्ट्र को परिपूर्ण करती रहती है जैसे अपने स्थान पर खड़ी हुई धेनु बिना किसी उछल-कूद के दूध की धाराओं से परिपूर्ण करती रहती है (दह प्रपूरणे) ।

कोई-कोई गाय दूध दुहने के समय बहुत अधिक उछल-कूद करती है । कोई गाय दुहने वालों को तंग कर देती है, इतना उपद्रव मचाती है कि दुहने वाला हैरान हो जाता है ।

इस मंत्र में यह भाव व्यक्त किया गया है कि हमारे राष्ट्र में धन की धाराएँ अनेक रूपों में बहती हैं किन्तु जैसे सीधी गाय, अपने नियमों में रहने वाली गाय, बिना किसी उछल कूद के दूध से परिपूर्ण कर देती है उसी प्रकार हमारे देश की भूमिमाता बिना किसी उपद्रव के अनेकों प्रकार के धन की धाराओं से देश को परिपूर्ण करती रहती है ।

यहाँ गो का अर्थ गाय और पृथिवी दोनों है। इसी प्रकार दुह का अर्थ दूध और परिपूर्ण करना (दुह परिपूरणे) दोनों है। गाय कभी-कभी दूध देने के समय उपद्रव करती है, उछलती-कूदती है। राष्ट्र में भी कई बार विभिन्न वर्गों के लोगों में असन्तोष और अशान्ति से उपद्रव खड़े हो जाते हैं। कभी श्रमजीवी श्रमिक आन्दोलन करते हैं, कभी सेना में आन्तरिक विद्रोह खड़ा हो जाता है, कई बार किसी और क्षेत्र में उपद्रव होता है। कभी-कभी बाढ़-बूड़ा या सूखा से राष्ट्र उपद्रव ग्रस्त हो जाता है। किन्तु इस मंत्र में यह कहा गया है कि हमारे राष्ट्र में उपद्रव ही नहीं होते। राष्ट्र के लोग इतने व्यवस्थित होकर जीवन बिताने में लगे रहते हैं जैसे एक ही घर में रहने वाले परिवार के सदस्य उपद्रव रहित होकर जीवन बिताते हैं और घर को धन की धाराओं से परिपूर्ण रखते हैं।

*

मंत्र–४६

'यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंश्मा हेमन्तजब्धो भृमलो गुहाशये ।
क्रिमिर्जिन्वत्पृथिवि यद्यदेजति प्रावृषि तन्नः
सर्पन्मोप सृपद्यच्छिवं तेन नो मृड ।।'

पदार्थः–

यस्ते=जो तुम्हारे । सर्पः=साँप आदि विषैले जन्तु । वृश्चिकः= बिच्छू । तृष्टदंश्मा=तीखा काटने वाले, या जिनके काटने से प्यास लगती है ऐसे विषैले जन्तु । हेमन्तजब्धः=शीतकाल में ठण्डक से पीड़ित जन्तु, ज्वर के उत्पादक । भृमलः=भँवरे की जाति के जीव, घुमरी पैदा करने वाले कृमि कीट । गुहाशये=बिलों में सोने वाले जीव । कृमिः=कीड़े-मकोड़े । जिन्वत्=जीते हैं । पृथिवि=हे भूमिमाता । यद्यदा=जो-जो । एजति=चलते हैं । गति करते हैं । प्रावृषि=वर्षा ऋतु में । तन्नः=वे सब हमारे लिए । सर्पन्=सरकते हुए । नः=हमारे पास । मा=नहीं । उपसृपत्=हमारे समीप आवें । यत्=जो । शिवम्=कल्याणकारी । तेन=उससे । नः=हमारे लिए । मृड=हमें सुखी करो ।

विमर्श–किसी राष्ट्र के निवासी सुख-सुविधा से रह सकें इसके लिए कहा जाता है कि उस देश में आलम्बन पदार्थ अवश्य होने चाहिए । आलम्बन पदार्थों में भोजन वस्तु और आवास की गिनती होती है । बढ़ती जनसंख्या के साथ पीने, सिंचाई आदि के लिए स्वच्छ जल तथा शुद्ध पर्यावरण, प्रदूषण रहित जलवायु आवश्यक हैं । इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये सब सुखी राष्ट्र के लिए आवश्यक हैं । किन्तु स्वस्थ नीरोग जीवन कम आवश्यक नहीं है ।

प्रस्तुत मंत्र में स्वास्थ्य विनाशक कृमि कीटों से, साँप-बिच्छू से

सुरक्षित रहने की बात कही गयी है । बस्तियों के आस-पास यदि झाड़ियाँ आदि होते हैं तो इनसे साँप-बिच्छू निकलकर बस्तियों में आ जाते हैं । साँप काटने से कई बार लोगों की मृत्यु हो जाती है । बिच्छू के काटने से बड़ा कष्ट होता है और बड़ी जलन होती है । कई कृमि कीट ऐसे भी होते हैं जिनसे शरीर की शीतलता और शान्ति नष्ट हो जाता है तथा जलन पैदा करने वाले ज्वर आदि उत्पात पैदा हो जाते हैं । कई कीड़ों के काटने से मनुष्य को चक्कर आने लग ज़ाता है । वर्षा ऋतु में ऐसे रोग पैदा करने वाले कीड़े अधिक पैदा होते हैं । कई कीड़े शीत के दिनों में बिल में सोये पड़े रहते हैं । वर्षा काल में बिलों में पानी भर जाने से वे बाहर निकल आते हैं । वर्षा में अनेक प्रकार के मसा, मच्छर, जहरीले कीड़े पैदा होते हैं, उनसे मलेरिया आदि कई प्रकार के संक्रामक और छुआछूत के रोग पैदा हो जाते हैं । इन सब रोगों से नये-नये कष्ट पैदा होते हैं ।

इस मंत्र में यह भावना व्यक्त की गयी है कि ऐसे कीड़े-मकोड़े हमारे पास न पहुँच सकें और हमारे लिए जो कल्ययाणकारी और सुखदायक है वही सुलभ रहें । मंत्र में मातृभूमि से अनुरोध किया गया है कि हमको सुखी बनाओ ।

मंत्र का एक आशय यह भी बनता है कि राष्ट्र की स्वास्थ्य और स्वच्छता सम्बन्धी नीतियां इतनी अच्छी हों कि देश के नागरिकों को रोगों से जूझना न पड़े और यदि रोग, बीमारी महामारी का प्रकोप कभी हो ही जाये तो हमारे राष्ट्र की व्यवस्था इतनी सुन्दर हो, औषधियाँ इतनी निर्भर योग्य हों तथा अस्पताल आदि की व्यवस्था इतनी अच्वी हो कि देश के नागरिकों को सदा सुखमय कल्याणकारी जीवन प्राप्त हो ।

*

मंत्र–४७

'ये ते पन्थानो बहवो जनायना रथस्य वर्त्मानसश्च यातवे । यैः संचरन्त्युभये भद्रपापास्तं पन्थानं जयेमनमित्रमतस्करं । यच्छिवं ते नो मृड ।।'

पदार्थः–

ये=जो । ते=तुम्हारे । पन्थानः=मार्ग, पथ । बहवाः=बहुत से । जनायनाः=(जन+अयनाः) मनुष्यों के आने-जाने के मार्ग (फुटपाथ) । रथस्य=रथ के । वर्त्म=मार्ग । अनसः=चलने के मार्ग बैलगाड़ियों से । यातवे=आने-जाने के लिए । यैः=जिनके द्वारा । संचरन्ति=चलते हैं। उभये=दोनों प्रकार के लोग । भद्रपापाः(भद्र+पापाः)=सज्जन और पापी लोग । तम्=उसको । पन्थानं=मार्ग को । जयेम्=जीत ले । अनमित्रम्= शत्रु रहित । अतस्करम्=चोर-डाकू से रहित । यत्=जो । शिवम्= कल्याणकारी । तेन=उसके द्वारा । नः=हमको । मृड=सुखी करो ।

विमर्श–प्रस्तुत मंत्र में राष्ट्र के यातायात, परिवहन, सड़कों और मार्गों का दिग्दर्शन कराया गया है । मंत्र को गंभीरता पूर्वक देखने पर यह पता चलता है कि मनुष्यों के आने-जाने के बहुत से मार्ग थे । उन मार्गों पर सभी लोगों का समान रूप से आना-जाना होता था । इन रास्तों पर कोई ऊँच-नीच का भेद भाव नहीं था, सभी भद्रजन और सज्जन लोग तथा पापी और दुष्ट लोग सभी को चलने की सुविधा थी । इन बहुत सारे जनपथ, पैदल रास्तों के अतिरिक्त राजमार्ग भी थे ।

हमारे राष्ट्र में बहुत से बड़े-चौड़े राजमार्ग हैं । इनमें आने-जाने के तीन-तीन खण्ड बने हुए थे । दोनों ओर किनारों पर मनुष्यों के आने जाने के पैदल चलने के, पदाति (फुटपाथ) उसके बाद बैलगाड़ियों

आदि धीमी गति से चलने वाले वाहनों का मार्ग था । उसके पश्चात् मध्य में तेज चलने वाले रथों का मार्ग था । इस प्रकार तीन खण्ड आने के और तीन खण्ड जाने के, ६ खण्डों वाले बहुत सारे राजपथ थे । इनमें सबसे मध्य में तीव्र गति से चलने वाले, उनके बाहर मध्यम गति से चलने वाले आदि मार्ग थे । बैलगाड़ियों, छकड़ों आदि के मार्ग हैं और सबसे बाहर की ओर पैदल चलने वाले यात्रियों के मार्ग हैं जिनपर लोग बराबर चला करते हैं ।

मंत्र में यह भाव है कि हमारा राष्ट्र इन मार्गों पर शत्रुरहित, चोर, डाकुओं से रहित, सुरक्षित बना रहे और हम हमारा राष्ट्र अपने मार्गों, यातायात और परिवहन को विजयी राष्ट्र की तरह शत्रुओं और चोरों डाकुओं से रहित विजय करते रहें ।

अन्त में मातृभूमि से यह प्रार्थना की गयी है कि हे पृथिवी माता हमारे आवागमन परिवहन, यातायात आदि में जो सुखकारी हैं, कल्याणकारी है वही कल्याणकारी सुख हमें प्राप्त कराईये ।

मंत्र का संदेश यह है कि पैदल चलने वालों के लिए बहुत सारे पैदल के मार्ग पगडण्डियाँ सुरक्षित और सुन्दर बनी रहें । बहुत सारे बड़ी संख्या में सुन्दर और सुदृढ़ मार्ग बनने चाहिएँ । ये मार्ग सुरक्षित और सुविधाजनक शत्रुओं, चोरों, डाकुओं से रहित होने चाहिएँ ।

ध्यान रखने की बात यह है कि सुन्दर मार्ग, सुरक्षित निष्कण्टक यातायात और परिवहन राष्ट्र की सुख-सुविधा और उन्नति के लिए अनिवार्य हैं । परिवहन और सुन्दर मार्ग उद्योग-व्यवसाय के लिए, आर्थिक एवं सामाजिक उन्नति के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं । सुन्दर मार्गों के बिना न उद्योग-व्यवसाय हो सकता है और न राजकीय शासन, शान्ति-सुव्यवस्था का प्रबन्ध हो सकता है अतः यह मंत्र सुरक्षित और अनेकों मार्गों का संदेश दे रहा है ।

*

मंत्र–४८

'मल्वं बिभ्रती गुरुभृद्भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः ।
वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय ।।'

पदार्थः– मल्वम्=धारण करने वाली, रखने वाली (To hold, to possess) । बिभ्रतीं=धारण करती हुई । गुरु भृद्=(गुरु वजनी, धार वाली (Great) विशाल भार वालों को धारण करने वाली । भद्र पापस्य=सज्जन और पापियों के । निधनम्=निवास (Residence) , मरण को । तितिक्षुः=सहन करने वाली । वराहेण=मेघ के साथ । पृथिवी=भूमिमाता । संविदाना=मिली हुई, प्राप्त की हुई । सूकराय=(सुकर) अच्छी प्रकार आसानी से काम करने के लिए । विजिहीते=विशेष रूप से प्राप्त होती है (ओहाङ्गतौ) । मृगाय = सुन्दर शुद्ध मार्ग, शुद्ध चेष्टा आदि के लिए ।

विमर्श–हमारी मातृभूमि में बहुत बड़ा धारण सामर्थ्य है । यह महान् पर्वतों, जलाशयों, नगरों आदि को धारण करती है । इसमें अपार धन, सम्पत्ति खिनज पदार्थों को धारण करने की क्षमता है । यह बड़े गुणवान्, विद्वान्, योग्यता वाले महान् गुण कर्मशील लोगों को धारण करती है ।

हमारी भूमिमाता इतनी महान् है इतनी दयालु और उदार है कि जैसे यह कल्याणकारी गुणवान्, महान पदाथों और लोगों को धारण करती है, उसी प्रकार यह पापी, सदाचारी लोगों को भी अपने में धारण करती हैं । हमारी मातृभूमि की सहन करने की क्षमता बहुत बड़ी है । यह अच्छे, बुरे सभी प्रकार के लोगों को और अच्छी-बुरी, सुखदायी और दुखदायी घटनाओं को भी सह लेती है । यह मातृभूमि

इतनी सहनशील है कि जैसे उत्तम मौसम, सुन्दर फसल शस्य-श्यामला कृषि को धारण करती है, उसी प्रकार राष्ट्रीय विपत्तियों को भी बाढ़-बूड़ा, सूखा आदि प्राकृतिक विपत्तियों को भी सहन कर लेती है। सुख के समय सुखों को, प्रसन्नता को और दुख के समय कष्टों, विपत्तियों और बाधाओं को भी यह सह लेती है।

हमारी मातृभूमि बादलों से प्राप्त जल को प्राप्त करती है। ठीक समय पर बादलों से वृष्टि होती है। कृषि, फूल, फल, वनस्पतियाँ सभी हरे-भंरे हो जाते हैं। "काले वर्षति पर्जन्यः" —ठीक समय पर मेघों से वृष्टि होती है और हमारी मातृभूमि समृद्ध हो जाती है।

हमारी मातृभूमि में कृषि करने वाले कृषक हों या उद्योग-व्यवसाय में लगे लोग हों, सबको सुकरता सुख-सुविधा मातृभूमि से सदा मिलती रहती है।

इस मंत्र से यह शिक्षा प्राप्त होती है कि हमारी मातृभूमि में महान् पर्वतों, गिरि कन्दराओं, सरिता जलाशयां और खनिज पदार्थों से सुकरता पूर्वक सुख-समृद्धि प्राप्त की जाती है।

हमारे राष्ट्र में समय-समय पर मेघों से वृष्टि होती है, कृषि के लिए उद्यान, बगीचों वन-वनस्पतियों के लिए वृष्टि मिलती रहती है। राष्ट्र के सभी लोग अपने जीवन को, क्रिया-कलाप में सुकरता पूर्वक सरलता से सुख-समृद्धि को प्राप्त करते रहते हैं।

*

मंत्र–४९

'ये त आरण्याः पशवो मृगा वने हिताः सिंहा व्याघ्राः पुरुषादश्चरन्ति ।
उलं वृकं पृथिविदुच्छुनामित ऋक्षीकां रक्षो अप बाधयास्मत् ।।'

पदार्थः– ये=जो । ते=तुम्हारे । आरण्याः=जंगली । पशवः=पशु । मृगाः=मृग । वने=जंगल में । हिताः=रहते हैं । सिंहाः=सिंह । व्याघ्राः=बाघ आदि । पुरुषादः=मनुष्यों को खा जाने वाले । चरन्ति=घूमते रहते हैं । उलम्=सियार आदि । वृकं=भेड़िया । पृथिवि=भूमिमाता । दुच्छुनाम्=(दुः+शुनाम्) दुष्ट जंगली कुत्ते । इतः=यहां से । ऋक्षीकाम् =रीछ आदि जंगली पशुओं को । अपबाधय=दूर रखो । अस्मत्=हमलोगों से ।

विमर्श :- दो तरह के पशु होते हैं, एक वे पशु हैं जो मानव समाज के लिए उपयोगी हैं । उन्हें प्रायः ग्राम्य पशु कहा गया है । गाय, घोड़े, भेड़ें और बकरियाँ मुख्य रूप से ग्राम्य पशु हैं । ये पशु कई प्रकार से मनुष्य समाज के लिए लाभ दायक हैं । किन्तु कुछ वन्य, जंगली पशु हैं । वे अरण्य पशु कहलाते हैं । उनमें कई तो हिंसक होते हैं, वे मनुष्यों को मार देते हैं और कई हिंसक तो नहीं होते किन्तु समाज की कृषि आदि को हानि पहुँचाते हैं ।

सिंह, बाघ, सियार, भेड़िया, रीछ आदि हिंसक स्वभाव के और दुष्ट प्रकृति के पशु होते हैं । ये जैसे ही अवसर मिलता है वैसे ही मनुष्यों को और ग्राम्य पशुओं को खा जाते हैं । वनों में रहने वाले पशुओं में मृग आदि कुछ ऐसे भी पशु होते हैं जो मनुष्यों को मार कर खाते तो नहीं किन्तु मनुष्यों के लिए उपयोगी कृषि आदि को खाते भी हैं और उन्हें कुचलकर नष्ट कर देते हैं ।

इस मंत्र में मातृभूमि से यह अनुरोध किया गया है कि ऐसे हानि पहुंचाने वाले और हिंसा करने वाले पशुओं को हमसे सदा दूर रखना और ऐसे दुष्ट पशुओं से सदा हमारी रक्षा करते रहना ।

इस मंत्र का यह संदेश है कि समाज की सामूहिक व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि ऐसे दुष्ट पशु गाँव को, मनुष्य समाज को अथवा ग्राम्य पशुओं को हानि न पहुँचा सकें । इस मंत्र में यह भी संदेश दिया गया है कि राष्ट्र का राजकीय प्रबन्ध और व्यवस्था इस तरह बनायी जाये कि ये जंगल के पंशु नागरिकों को हानि न पहुँचा सकें ।

विशेष विचार

मंत्र ४६ में साँप, बिच्छु आदि बिलों में छिपे रहने वाले अथवा ऐसे कीड़े-मकोड़े या बिषैले जन्तु जो बिलों या गुफाओं में रहते हैं और मनुष्य को अनेक प्रकार से हानि पहुंचाते हैं उनसे रक्षा करने की प्रार्थना की गयी है ।

अब ४९ वें मंत्र में जंगली हिंसक पशुओं और हानिकारक पशुओं से रक्षा करने की बात कही गयी है । ऐसी राजव्यवस्था और समाज व्यवस्था होनी चाहिए कि बाघ, रीछ आदि हिंसक जन्तु समाज को हानि न पहुँचा सकें । मृग और नीलगाय आदि जंगली पशु खेतों को न चर जायें तथा सियार, भेड़िये आदि समाज में और गांव में उपद्रव न मचा सकें ।

*

मंत्र–५०

'ये गन्धर्वा अप्सरसो ये चरायाः किमीदिनः ।
पिशाचान्त्सर्वा रक्षांसि तानस्मद्भूमे यावय ।।'

पदार्थः–

ये=जो । गन्धर्वाः=(गन्धं अर्वति) तेल फुलेल इतर आदि सुगन्धित द्रव्यों में जीवन बिताने वाले विलासी लोग । अप्सरसः=अप्सरायें, वेश्यायें जो बनने, ठठने और दूसरों को आकर्षित करने वाली स्त्रियाँ। ये च=और जो । अरायाः=(रादाने) जो सर्वथा दान रहित कंजूस वृत्ति वाले हैं । किमीदिनः=लालची, दूसरों की वस्तु हड़पने वाले । पिशाचान्=मांस खाने वाले, दूसरों का शोषण करने वाले क्रूर लोग । सर्वाः=सब । रक्षांसि=राक्षस, अपने स्वार्थ के लिए दूसरों को चूसने वाले । तान्=उन सबको । अस्मद्=हमसे । भूमे=हे भूमिमाता । यावय=दूर करो ।

विमर्श–समाज में प्रायः दो प्रकार के लोग होते हैं, एक वे हैं जो परिश्रमी स्वभाव के, तपस्वी, अपने परिश्रम से उत्पन्न करके खाते-पीते और जीवन निर्वाह करते हैं । दूसरे वे लोग भी हैं जो विलासी प्रकृति के होते हैं । वे तेल फुलेल इतर सुगंध लगाकर मौज-मस्ती करना चाहते हैं । ऐसे लोग सुगन्धित पदार्थों के सेवन में जीना चाहते हैं । इन्हें मंत्र में गन्धर्व कहा गया है । ऐसे लोग दूसरों के परिश्रम पर श्रमजीवियों का शोषण करके जीने वाले (Parasite) होते होते हैं । मंत्र कहता है कि हे भूमिमाता ऐसे लोग हमारे समाज में पैदा ही न हों, उन्हें हमसे दूर रखो ।

कुछ तेग-फुलेल, साज-सज्जा से सजी हुयी, अपनी चमक-

दमक से दूसरों को चूसने वाली वेश्याओं की तरह होती हैं । वे भी विलास की जिन्दगी जीना चाहती हैं । ये विषय भोग दुराचार के अड्डे बना रखती हैं । मंत्र में ऐसी विलासी दुराचारिणी स्त्रियों को भी दूर रखने का संदेश दिया गया है ।

समाज में कुछ ऐसे भी लोग हैं जो केवल योजना बनाते रहते हैं कि किसका पावें, किसका हड़प लेवें, क्या पायें, क्या हड़प लें। ऐसे लोगों को मंत्र में किमीदिनः कहा गया है (किम् इदम् चरन्ति) । ऐसे दूसरों के परिश्रम पर जीने वाले लोगों को समाजं से दूर रखने का संदेश दिया गया है ।

समाज में कुछ लोग पिशाच, राक्षस प्रकृति के होते हैं । पिशाच वे लोग होते है जो मांस खाने वाली प्रकृति के हैं । राक्षस वे लोग होते हैं जो अपनी सुख-सुविधा के लिए, अपने आनन्द के लिए दूसरों को हानि पहुँचाते हैं । मंत्र में मातृभूमि से यह अनुरोध किया गया है कि ऐसे लोगों को हमारे समाज से पृथक् रखो ।

इस मंत्र में यह संदेश दिया गया है कि अपने समाज की विचार धारा और चरित्र को तपस्वी, परिश्रमशील बनाकर रखें । भोग प्रधान विलासी जीवन जीने वाले शोहदा, लफंगे मनुष्य हमारे समाज में न हों, स्त्रियां प्रदर्शन-प्रिय और दुराचारिणी न हों । हमारे समाज में कृपण और चलाकी से दूसरों की कमाई हड़पने वाले भी न हों । हमारे समाज के लोग ऐसी शिक्षा-दीक्षा में पाले-पोसे जायें कि उनका जीवन तपस्वी और परिश्रमी हो । वे दूसरों को लूटने में नहीं बल्कि अपने परिश्रम से उपार्जित धन सम्पत्ति में से दूसरों को दान करें, दूसरों की सहायता करें ।

*

मंत्र—५१

'यां द्विपादः पक्षिणः संपतन्ति हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि । यस्यांवातो मातरिश्वेयते रजांसि कृण्वंश्च्यावयंश्च वृक्षान् । वातस्य प्रवामुपवामनु वात्यर्चिः ।'

पदार्थः–

याम्=जिस पर । द्विपादः=दो पैरों वाले अथवा (द्वयोः पद्यन्ते) पृथिवी और आकाश दोनों स्थानों में गति करने वाले । पक्षिणः=पक्षी । संपतन्ति=अच्छी तरह गति करते और उड़ते हैं । हंसाः=हंस । सुपर्णाः=गरुड़ । शकुनाः=चील और गिद्ध । वयांसि=कौए । यस्याम्=जिस पर, जिसमें । वातो=हवा । मातरिश्वा=आकाश । इयते=चलाता है । रजांसि=धूल, जल । कृण्वन्=करता हुआ । च्यावयम्=हवा का । प्रवाम उपवाम=प्रबल वेग से बहने वाला । वाति=चलती है । अर्चिः= गर्मी की हवा, गर्म वायु (लू आदि) ।

विमर्श–इस मंत्र में मातृभूमि के प्राकृतिक सौन्दर्य का बड़ा मनोहारी चित्रण चित्रित किया गया है । मंत्र में कहा गया है कि हमारी मातृभूमि में हंस, गरुड़, गिद्ध, चील, अनेकों प्रकार के पक्षी बड़ी सुन्दरता और स्वतंत्रता से उड़ते रहते हैं (संपतन्ति, आनन्दपूर्वक उड़ते रहते हैं ।) इस वर्णन में एक तो यह है कि मातृभूमि में सर, सरोवर, अन्य प्रकार के छोटे-बड़े जलाशय बहुतायत से हैं । आँखों के समाने झुण्ड के झुण्ड हंस, बत्तख, बगुले और भी अनेकों प्रकार के पक्षी तालाबों में तैरते हैं, आकाश में उड़ते हैं, मीठे-मीठे कलरव करते हैं । इस वर्णन से यह भी प्रतीत होता है कि हंस गरुड़ आदि सुन्दर पक्षियों का शिकार करने वाले पापी लोग हमारे मातृभूमि म नहीं है ।

हमारी मातृभूमि में गिद्ध, चील आदि हिंसक पक्षी तथा और दूसरे पक्षी भी आनन्द से विहार करते हैं । जैसे हंस आदि सुन्दर पक्षियों को कोई नहीं मारता है, उसी प्रकार हिंसक प्रकृति के शकुन, गिद्ध, चील आदि भी आनन्द से आकाश में उड़ते हैं, उन्हें भी कोई नहीं मारता । चाहे कौआ, कबूतर जैसे छोटे पक्षी हों या गिद्ध , चील जैसे बड़े हिंसक पक्षी हों या फिर हंस आदि मनमोहक, सभी अपनी कलरव, अपनी उड़ान से मातृभूमि की पुलकित दृश्यावली को मनमोहनी बना देते हैं ।

प्रकृति की सुन्दरता का वर्णन करते हुए मंत्र में कहा गया है कि हमारी मातृभूमि में रातों-दिन प्राणप्रद वायु का गतिमान प्रवाह बना रहता है । मंत्र में वात और मातरिश्वा दोनों शब्दों का प्रयोग हुआ है जिसका आशय यह है कि हमारी मातृभूमि में प्राणप्रद वायु सदा बहती रहती है, कभी प्राणों की कमी नहीं होती ।

कभी-कभी हवा का प्रचण्ड झंझावात इतनी तीव्र गति से चलता है कि आकाश धूल से भर जाता है । ब्रड़े-बड़े वृक्ष भी जड़ से उखड़ जाते हैं । कभी-कभी वृष्टि प्रचण्डता से होने लगती है (उदकम् रजः उच्यते) निरु० ४-१९) । तीव्र वर्षा का प्रचण्ड झंझावात, आँधी, ज्येष्ठ, आषाढ़ में यह दृश्य भी कितना प्यारा लगता है (बंगाल की काल बैशाखी, इंग्लैण्ड की West Wind by Keats की याद दिला देती है) ।

मंत्र में एक पद है वात का प्रवाम=विस्तार उपवाम्=संकोच जिससे हवा का विभिन्न प्रकार का विस्तार और संकोच प्रकट होता है । इससे प्रकाश का, सूर्य की किरणों का सुन्दर वर्णन समझ में आता है।

इस मंत्र में पक्षियों की सुन्दरता और उनका आनन्दपूर्वक विहार तथा गर्मी वर्षा के प्रचण्ड झंझावात की सुन्दरता का एक अद्भुत वर्णन प्राप्त होता है ।



मंत्र–५२

'यस्यां कृष्णमरुणं च संहिते अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि । वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता सा नो दधातु भद्रया प्रिये धामनिधामनि ।।'

पदार्थः–

यस्यां=जिस भूमि पर । कृष्णम्=अंधकार । अरुणं=चमकीला, प्रकाशमय । च=और । संहिते=मिलकर । अहोरात्रे=दिन और रात । विहिते=बनाये गये हैं । भूम्यामधि=भूमि पर । वर्षेण=वर्षा के द्वारा । भूमिः=पृथिवी । पृथिवी=विस्तृत (पृथु विस्तारे) । वृतावृता=अच्छादित । सा=वह । नः=हमारे लिए । दधातु=धारण करे । भद्रया=कल्याण से अथवा गायों से (भद्रा=गाय) । प्रिये=प्रिय । धामनिधामनि=प्रत्येक स्थान में ।

विमर्श–हमारी मातृभूमि में चमकीले प्रकाशयुक्त दिन और अंधकार युक्त रातें अच्छी तरह से बनायी गयी हैं । बर्फीले ठण्डे प्रदेशों में दिन में चमक और उष्णता नहीं होती, कई प्रदेशों में तो रात को भी अंधकार नहीं होता । पर हमारी मातृभूमि ऐसी अद्भुत सुन्दर है कि निरन्तर उज्ज्वल चमकीले दिन और अंधकारमयी रात मिलकर निरन्तर आते-जाते रहते हैं । दिन और रात का चक्र कितना स्वास्थ्य दायक है, दिन में कसकर परिश्रम पूर्वक काम करना और रात में शिथिल होकर पूर्ण विश्रामं करना । यह कार्य और विश्राम, श्रम और विश्राम निरन्तर स्वास्थ्य के अनुकूल बना रहता है ।

हमारी पृथिवी पर वृष्टि के जल से हमारे लिए चारों ओर कल्याण की वर्षा प्रत्येक स्थान-स्थान पर (धामनिधामनि) होती रहती है ।

वर्ष का अर्थ जब सूर्य लेते है तो सम्पूर्ण वर्ष हमारी पृथिवी सूरज के चारों ओर घूमती रहती है और उससे वर्ष भर हमारी मातृभूमि में सुन्दर ऋतुओं की रचना से कल्याण बरसता रहता है।

हमारी मातृभूमि सदा वर्षा के कारण पूरे वर्ष हरी-भरी बनी रहती है। हमारी मातृभूमि में समय समय पर पर्याप्त वृष्टि होती है, जिससे सदा सभी स्थानों पर कल्याण बरसता रहता है।

भद्र का अर्थ गाय भी होता है। हमारी मातृभूमि में सदा पशु धन भरपूर बना रहता है। चारों ओर कल्याण का निवास बना रहता है और पशु धन से भरपूर होने के कारण हमारी मातृभूमि में सर्वत्र प्रीति और कल्याण बना रहता है।

*

मंत्र–५३

'द्यौश्च मे इदं पृथिवी चान्तरिक्षं च मे व्यच : ।
अग्निः सूर्य आपो मेधां विश्वे देवाश्च संदुदुः ।।'

पदार्थः–

द्यौः=द्यौलोक । च=और । मे=मेरे लिए, हमारे लिए । इदं=यह । पृथिवी=भूमिमाता । अन्तरिक्षं=अन्तरिक्ष में, पृथिवी एवं द्यौलोक के बीच के स्थान में । व्यचः=विस्तार, विशालता (Vastness) अग्निः=अग्नि । आपः=जल । मेधां=धारणावती बुद्धि । विश्वेदेवाः=सभी देवता । संदुदुः=हमको दें ।

विमर्श–मातृभूमि के नागरिक अपनी मातृभूमि और उसके ऊपर अन्तरिक्ष और उससे भी ऊपर विशाल द्यौलोक को, उसके विस्तार को उसकी विशालता को ध्यान में लाकर इस विशालता का चिन्तन करके गर्व का अनुभव करते हैं । जैसे हमारी मातृभूमि उसका आकाश और उसका द्यौलोक विशाल है उसी प्रकार की विशालता इसमें आवे । हम कंजूस क्षुद्र बुद्धि और संकुचित हृदय के न बनें । हमारी विशालता भौतिक रूप में हमें भगवान ने इस विस्तृत विशाल प्राकृतिक सम्पदा के रूप में दी है । इसी प्रकार हमारी बौद्धिकता और आध्यात्मिकता में भी विशालता आवे । हम अपनी वुद्धि अपने बौद्धिक बल, अपनी मेधा प्रज्ञा को विशाल बनावें । हमारी सोच में क्षुद्रता न आवे । हमारे आध्यात्मिक गुणों का भी पूर्ण रूप से विस्तार होवे ।

हमारे राष्ट्र में तेजस्वी अग्नि और सूर्य चमकते रहते हैं । हमारे आकाश में, मेघों में जल भरा रहता है । हमारी मातृभूमि इस अग्नि, मेघ, वर्षा और जल से सदा सनाथ रहती है ।

संसार के कई देश हैं जहाँ सूर्य साल भर नहीं चमक़ता । ऐसे देशों में आकाश में स्थित जल मेघ का रूप लेकर जल बरसाने की जगह हिम बर्फ बरसाता है । ऐसी जगहों में लहलहाती हुई खेती, कृषि की सम्पदा सब दुर्लभ है । हमारे देश में अग्नि, सूर्य, बादल और उनमें स्थित जल का हमें भरपूर प्रसाद मिलता है । जिससे हमारी कृषि और हमारी प्राकृतिक सम्पदा बनी रहती है ।

मंत्र में यह कहा गया है कि अग्नि, सूर्य, मेघ, जल, सभी से हमें सुन्दर बुद्धि मिलती रहे । जब सभी देव अनुकूल रहते हैं तो हमारा मन, बुद्धि, मस्तिष्क सभी स्वस्थ और सबल बने रहते हैं ।

मंत्र में यह कहा गया है कि ये सभी भौतिक देव मुझे मेधा प्रदान करें । मेधा का दो भाव है—शाब्दिक अर्थ के रूप में मेधा वह बुद्धि है जिसमें धारणा शक्ति सुरक्षित रहती है । जो भी हम बुद्धि में ग्रहण करें, सीखें वह हमारे मस्तिष्क में चिरस्थायी रहे, हम उसे जल्दी भूल न जायें ।

धारणावती बुद्धि का यह भी अर्थ है कि हमारी बुद्धि केवल सोचने तक सीमित न रहे । हम जो सोचें उसे कार्य रूप में परिणत भी करें । हम केवल ख्याली पुलाव न पकावें, बल्कि जो सोचें वैसा करके भी दिखा दें ।

मंत्र का भाव यह है कि ये सब प्रकृति के देवगण हमें भी बुद्धि दें और कार्य करने में हमें कुशल एवं सफल बनावें ।

*

मंत्र–५४

'अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम् ।
अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः ।।'

पदार्थः–

अहम्=मैं, हम राष्ट्र के नागरिक । अस्मि=हूँ, हैं । सहमानः= मोर्चे पर सहनकर जाने वाला, शत्रुओं को सह लेने वाला अर्थात् पराजित कर देने वाला । सर्दी-गर्मी, अनुकूल-प्रतिकूल, द्वन्दों और परिस्थितियों को सह जाने वाला । उत्तरः=बढ़-चढ़कर,उत्कृष्टतर । नाम=यश, प्रसिद्ध, प्रतिष्ठित । भूम्याम्=भूमि के ऊपर । अभीषाट्= शत्रुओं का पराजय करने वाला । अस्मि=हूँ या हैं । विश्वाषाट्=मेरे शत्रुओं को पराभूत करने वाला । आशाम् आशाम्=प्रत्येक दिशा में । विषासहिः=पराजित कर देने वाला ।

विमर्श–इस मंत्र में साथ ही साथ दो अर्थ दिखाई पड़ रहे हैं—एक राष्ट्रीय सन्दर्भ में और दूसरा आध्यात्मिक सन्दर्भ में ।

(१) राष्ट्रीय संदर्भ में :– राष्ट्र के नागरिक आत्मविश्वास से भरपूर हैं । राष्ट्र के नागरिकों का प्रतिनिधि स्वाभिमान से भरपूर होकर घोषणा करता है कि मेरे शत्रु, मेरे राष्ट्र के विरोधी जब कभी भी हमारे राष्ट्र को ललकारते हैं या हमारे राष्ट्र पर आक्रमण करते हैं तो मैं उन्हें ललकार कर पराजित कर देता हूँ और मेरा यह यश सम्पूर्ण पृथिवी में छाया हुआ है । मेरे राष्ट्र को कोई आँख नहीं दिखा सकता । मेरे राष्ट्र पर कोई आक्रमण नहीं कर सकता । हमारा राष्ट्र सभी दिशाओं से—पूर्व, पश्चिम उत्तर, दक्षिण सब ओर से सुरक्षित है ।

राष्ट्र की सुरक्षा की दिशाओं का एक और रूप बनता है—भूमि

पर आक्रमण, समुद्रों की ओर से आक्रमण और आकाश की ओर से आक्रमण । हमारे राष्ट्र पर चाहे भूमि से आक्रमण हो, चाहे समुद्रों से आक्रमण हों और चाहे आकाश मार्ग से आक्रमण हो, हम सभी दिशाओं में अपने राष्ट्रीय शत्रुओं को पराजित कर देने में प्रसिद्ध हैं। सारा संसार जानता है, पृथिवी के सभी राष्ट्र जानते हैं कि यह देश मोर्चे पर सभी शत्रुओं से उत्कृष्ट पड़ता है, सबको पराजित कर देता है ।

(२) आध्यात्मिक संदर्भ म—आध्यात्मिक सन्दर्भ में काम क्रोध, लोभ, मोह आदि हमारे आध्यात्मिक शत्रु हैं । मंत्र में नागरिक कहता है कि संसार के लोग मेरे इस यश को जानते है कि मैं इन अध्यात्मिक शत्रुओं को सहकर पराजित कर देता हूँ । कई बार ये शत्रु मेरे न चाहने पर भी मेरे मन में घुस आते हैं । ये आध्यात्मिक और चरित्र के शत्रु चाहे जिस दिशा से आवें मैं इन सबको सह लेता हूँ । इनको जीत लेता हूँ । हम इन सांसारिक कामनाओं को सहकर सदा अपने यश की रक्षा करने में प्रसिद्ध हैं ।

राष्ट्रीय एवं आध्यात्मिक, दोनों दृष्टियों से हमारी एवं हमारे राष्ट्र की श्रेष्ठता विश्व प्रसिद्ध है । विश्व के सभी राष्ट्र हमारी वरीयता स्वीकार करते हैं ।

*

मंत्र–५५

'अदो यद्देवि प्रथमाना पुरस्ताद्देवैरुक्ता व्यसर्पो महित्वम् ।
आ त्वा सुभूतमविशत्तदानीमकल्पयथाः प्रदिशश्चतस्त्रः ।।'

पदार्थः–

अदः=उसको (महिमा और विशालता को) । यत्=जब जिस समय । देवि=हे भूमिमाता । प्रथमाना=विशालता, विस्तार को प्राप्त । पुरस्ताद्=पहले से । देवैः=विद्वानों और दिव्य गुणों वाले लोगों के द्वारा । उक्ता=कही गयी, प्रशंसित । व्यसर्पः=गति करती हो, प्राप्त करती हो (सृप गतौ) । महित्वम्=महिमा को । आ=चारों ओर से । त्वा=तुम, तुझसे । सुभूतम्=उत्तम ऐश्वर्य, कल्याण, (Welfare) । आविशात्=प्रवेश करता है । तदानीम्=उस समय । अकल्पयथाः=शक्तिशाली बनाती हो (क्लृपू सामर्थ्ये) । प्रदिशः=दिशाओं में । चतस्त्रः=चारों ।

विमर्श–किसी भी मातृभूमि में जो लोग रहते हैं वे अपनी महान् मातृभूमि के ऐश्वर्य की महिमा का संज्ञान करते हैं । मातृभूमि के निवासियों को अपनी मातृभूमि के विस्तार पर, गौरव पर और महिमा पर गर्व होता है । राष्ट्र के देवपुरुष विद्वान् लोग प्रशंसा के गीत गाते हैं और मातृभूमि में पालन करने वाली माता की झलक का अनुभव करते हैं । देशवासी मातृभूमि के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं और मातृभूमि सब प्रकार से उन्नति करके ऐश्वर्य और कल्याण प्राप्त करती है ।

मातृभूमि अपने पुत्र-पुत्री सभी को ऐश्वर्यशाली बनाती है और उनका कल्याण (Welfare) करने में अग्रसर होती है । मातृभूमि की

विपन्नता दूर करने के लिए कृषि, उद्योग और व्यवसाय सबकी उन्नति होने लगती है और मातृभूमि में अनेक प्रकार के सुभूत, ऐश्वर्य, कल्याण का उदय हो जाता है। इस प्रकार मातृभूमि अपने नागरिकों को, प्रजाओं को सब ओर से सामर्थ्यवान् बनाती है।

यह प्रदिशः बड़ा भावगर्भित है। मातृभूमि का प्रत्येक प्रदेश उन्नत और सम्पन्न हो। सभी ओर से आर्थिक सैनिक शक्ति का विकास हो। अध्यात्म और चरित्र कल्याणकारी हो।

जिस देश के नागरिक अपने देश, अपनी मातृभूमि के प्रति आदर और सम्मान का भाव रखते हैं, वे अपने मातृभूमि के गौरव-गान में गर्व का अनुभव करते हैं और वहाँ शासन और सामाज़िक व्यवस्था उत्तम होती है। यह चेष्टा की जाती है कि हमारे देश को कभी किसी दूसरे राष्ट्र के सामने हाथ न फैलाना पड़े। राष्ट्र भूमि के लोग देव चरित्र के हों, चेष्टा करने वाले उद्योगी, परिश्रमी हों तो सब ओर से मातृभूमि में ऐश्वर्य और कल्याण विराजता है और तभी, उसी स्थिति में अपनी मातृभूमि की विशालता, महिमा और यश का गान शोभा पाता है।

*

मंत्र–५६

'ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम् ।
ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते ।।'

पदार्थः–

ये=जो । ग्रामाः=ग्राम (गांव के लोग, गाँव की पंचायत) । यत्=जो । अरण्यं=जंगल (वनवासी, वानप्रस्थ) । याः=जो । सभाः=सभाएँ । अधि=अच्छी तरह । भूम्याम्=इस भूमि पर, मातृभूमि पर । संग्रामाः=संग्राम । समितयः=सभायें । तेषु=उन सब में । चारु=सुन्दर, प्रशंसनीय, यशस्वी । वदेम=बोलें । ते=तुम्हार लिए ।

विशेष विचार :-

इस मंत्र में ग्राम, अरण्य,सभा और समिति ये चार शब्द कुछ विशेष व्याख्या की आकांक्षा रखते हैं । संस्कृत में एक वाक्य उदाहरण में बोला जाता है—''मंचाः क्रोशन्ति'' इसका अर्थ होता है, मंच पर बैठे लोग बोल रहे हैं । इसी प्रकार इस मंत्र में गांव, वन, सभा, समिति सभी मातृभूमि का यश, गौरव गा रहे हैं । इस भाषा का अर्थ हुआ कि गांव के लोग, नगरों के लोग, ग्राम, पंचायतों के लोग, नगर, सभाओं (Municipality) सभाओं और समितियों के लोग मातृभूमि के यश का गान करते हैं ।

विमर्श–इस मंत्र में यह कहा गया है कि ऐ मेरी प्यारी मातृभूमि ! तुम्हारे गाँव और ग्राम पंचायतो में, नगरों और नगर की सभाओं में लोग जब बैठते हैं तो तुम्हारे यश की वन्दना करते हैं । गाँव में ही नहीं, तुम्हारे जंगलों में जो रहने वाले हैं अथवा जो घर छोड़कर अब जंगलों में तपस्या कर रहे हैं, वानप्रस्थी लोग हैं वे भी

तुम्हारी प्रशंसा के गीत गाते हैं।

संग्रामों में युद्धों में शत्रुओं के साथ लड़ने में हमारे सैनिक और हमारे नागरिक, हमारे देश की सभी सभाएँ और समितियां मातृभूमि की वन्दना करती हैं। वन्दे मातरम् का गीत गाते हैं।

वेद में सभा और समिति और संग्राम सेना विशेष अर्थों में प्रयोग किये गये हैं। सभा राष्ट्र की सभा है, सम्भवतः विधि पालिका है और समितियाँ मंत्रिमंडल और विधान सभाएं हैं। आज की भाषा में ये सभा और समितियाँ विधि पालिका, कार्य पालिका और न्याय पालिका कही जा सकती है। स्वामी दयानन्द जी ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' और 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' में इन शब्दों पर विशेष रूप से विचार किया है। यहाँ हम उन पारिभाषित व्याख्याओं में न जाकर सीधा-सीधा सभा, समिति, सेना या संग्राम अर्थ ले लेते हैं।

राष्ट्र में उन्नति, प्रगति और व्यवस्था की दृष्टि से कई प्रकार के संगठन बनाये जाते हैं। आज के युग में हमारे गाँव में ग्राम पंचायत और नगरों में नगर पालिका और सरकार में राज्य सभा, संसद आदि सब सभाएं और समितियाँ ही हैं। जिस किसी भी उद्देश्य के लिए बनाया गया संगठन हो, जो भी सभा, समितियाँ हों, हम सब जगह मातृभूमि का यश ही गाते हैं। अपनी मातृभूमि या अपने राष्ट्र के विरुद्ध हम कभी निन्दा या अपयश की बात नहीं करते हैं, सदा मातृभूमि का यशगान और प्रशंसा ही करते हैं।

जब कभी कोई राष्ट्र दुर्भाग्यवश हमारे राष्ट्र पर आक्रमण कर देता है और अनचाहे भी हमें संग्राम में अपनी सेनाओं के साथ उतरना पड़ता है तो उस समय भी हम अपनी मातृभूमि का सदा गुणगान ही करते हैं जिससे हमारे राष्ट्र के नागरिकों और हमारे संग्राम में लड़ने वाले सैनिकों का मनोबल सदा ऊँचा बना रहे। *

मंत्र–५७

'अश्वइव रजो दुधुवे वि ताञ्जनान्यआक्षयन्पृथिवों यादजायत।
मन्द्राग्रेत्वरी भुवनस्य गोपा वनस्पतीनां गृभिरोषधीनाम्।।'

पदार्थः–

अश्वः=घोड़ा। इव=जिस तरह। रजः=धूलि। दुधुवे=हिलाकर दूर झाड़ देना। वि=विशेष रूप से। तान्=उनकों, उनलोगों को। जनान्=मनुष्यों को। ये=जो लोग। आक्षयन्=हानि पहुंचाते है, (क्षिक्षये-क्षि हिंसायाम्)। पृथ्वीं=पृथ्वीं को, मातृभूमि को। यात्=जब से, जिस समय से। अजायत बनी है। मंद्रा=प्रसन्न करने वाली, हर्ष पहुँचाने वाली। अग्रेत्वरी=प्रगति की ओर, उन्नति की ओर शीघ्रता से बढ़ने वाली (अग्रे+त्वरी)। भुवनस्य=संसार को। गोपाः=रक्षा करने वाली। वनस्पतीनां=वनस्पतियों का। गृभिः=धारण करने वाली। ओषधीनाम् =औषधियों को या औषधियों का।

विमर्श–देश में बहुसंख्यक लोग स्वदेश की उन्नति को अपनी उन्नति समझते हैं। जब देश के नागरिक उन्नति करते हैं, आगे बढ़ते हैं, धन-सम्पत्ति आदि का अर्जन करते हैं तो यह देश की, मातृभूमि की ही उन्नति समझी जाती है। देश के निवासी अपने उद्योग से, उद्योगशीलता से, परिश्रम से देश की कृषि, उद्योग, व्यवसाय, अन्य प्रकार के कार्य जिनसे देश की सम्पन्नता प्रसन्नता बढ़ती है तो यह सब देश की उन्नति, सम्पन्नता समझी जाती है। यही उन्नति जब तुलनात्मक रूप में, और देशों की अपेक्षा शीघ्रता से होती है तो इसे देश की ही शीघ्रता पूर्वक उन्नति होती है। इसी को मंत्र में ''अग्रेत्वरी'' कहा गया है।

कई लोग इस उन्नति में ईमानदारी के साथ देश की प्रगति में

सहायक नहीं होते हैं। कई लोग देश की उन्नति को एक किनारे छोड़कर, अपनी व्यक्तिगत उन्नति को देश की उन्नति की अपेक्षा अधिक महत्त्व देते हैं। ऐसे लोग दूसरे राष्ट्रों के साथ मिलकर अपनी जन्मभूमि को धोखा देते हैं, जन्मभूमि को, उसके आर्थिक स्वार्थ को, उसकी सम्पन्नता को हानि पहुँचाते हैं। देश के समझदार शासक ऐसे लोगों को धूल की तरह झाड़कर दूर फेंक देते हैं।

प्रस्तुत मंत्र में एक बड़ी सुन्दर उपमा दी गयी है। घोड़े जब यात्रा करते हैं तो चारों ओर से उनके ऊपर धूल आकर गिरती है। घोड़े इस अनचाही हानिकारक धूल को अपने शरीर से झाड़ फेंकते हैं। धूल को परे फेंकने के लिए घोड़े अपने शरीर को इस प्रकार प्रकम्पित करते हैं कि शरीर के उस कांपने से धूल अपने आप गिर जाती है। मंत्र में यह कहा गया है कि हमारे पूर्वजों ने जब से अपनी मातृभूमि को सँभाला, तभी से राष्ट्र को हानि पहुँचाने वाले दस्यु स्वभाव के लोगों को परे फेंकते रहे हैं। यदि समझाने से वे नहीं सुधरते तो उन्हें कारागार आदि में डालकर सामाजिक संगठनों से अलग कर देते हैं।

हमारी मातृभूमि अपने पुत्र-पुत्रियों के लिए सदा से प्रसन्नता और हर्ष देने वाली है। स्वयं शीघ्रता से सम्पन्नता की ओर बढ़ती है और अपने निवासियों को सम्पन्नता के पथ पर शीघ्रता से चलाकर हर्षित करती रहती है।

हमारी मातृभूमि अपने ऊपर उगने वाली वनस्पतियों और औषधियों को अच्छी तरह धारण पोषण करने वाली है। इन वनस्पतियों और औषधियों में अन्न, मूल, फल सभी प्राकृतिक उत्पादनों को सम्मिलित समझना चाहिए। हमारी मातृभूमि प्रकृति की इस सम्पूर्ण देन का सदा से पालन-पोषण और धारण करती आ रही है।

*

मंत्र–५८

'यद्वदामि मधुमत्तद्वदामि यदीक्षे तद्वनन्ति मा ।

त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान्हन्मि दोधतः ।।'

पदार्थः–

यत्=जो कुछ । वदामि=बोलता हूँ । मधुमत्=मीठा, मिठास से भरा हुआ । तत्=वह । यदीक्षे=जो कुछ भी देखता हूँ । तद्वनन्ति=वे मुझे प्रेम से देखते हैं । मा=मुझको । त्विषीमान्=तेज से, प्रदीप्त=(त्विष् दीप्तौ) । अस्मि=हूँ । जूतिमान्=वेग वाला । अन्यान्=शत्रुओं को । अवहन्मि=हनन कर देता हूँ । दोधतः=हानि पहुँचाने वालों को (दूध= Kill, Hurt) ।

विमर्श–इस मंत्र में नागरिक अपनी मातृभूमि की प्रथाओं, परम्पराओं बोल-चाल, हाव-भाव की प्रकृति का सुखद वर्णन कर रहा है । कई देशों की परम्परा से वाणी कर्कश होती है । बोलने वाले जो कुछ बोलते हैं उसमें भी कड़वाहट भरी रहती है । ऐसे देश में अच्छी बातों को भी कर्णकटु बनाकर बोलते हैं । इस मंत्र का नागरिक अपनी मातृभूमि की परम्परा को और सामाजिक व्यवस्था को प्रशंसनीय रूप में लेता हुआ कह रहा है कि मैं जो कुछ बोलता हूँ वह मिठास से, नम्रता से, प्रेम से भरा रहता है । न मेरे शब्द कटु होते हैं और न ही मेरा वक्तव्य कटु होता है । हमारे देश के लोग मधुर बोलते हैं और मधुमयी वाणी में मिठास भरी बातों और व्यवहारों को प्रकट करते हैं । हमारे नागरिक मधुमय हैं ।

इसी प्रकार देश का नागरिक अपनी मातृभूमि को सम्बोधन करता है कि मैं जो कुछ देखता हूँ अर्थात मुझसे जिसका भी सम्पर्क

होता है, उसे मैं अच्छी तरह देखता हूँ और उसका सेवन करता हूँ और जो कुछ भी घटना घटती है उसका मैं निरीक्षण, परीक्षण करता हूँ और उससे लाभ उठाने का प्रयत्न करता हूँ। मैं देखता हूँ कि जो कुछ हो रहा है वह हमारे देश और समाज की व्यवस्था को हानि तो नहीं पहुँचा रहा है। हानि पहुँचाने वालों को मैं समाप्त कर देता हूँ।

हे मातृभूमि ! तुम्हारे नागरिक तेज से युक्त तेजस्वी हैं, बहादुर और प्रतापी हैं। हमें अवहेलना की दृष्टि से देखकर कोई नहीं रह सकता। मैं शत्रुओं को समाप्त कर देता हूँ।

हे मातृभूमि ! तुम्हारे देश के नागरिक जूतिमान् हैं, वेगवान् हैं। उनकी गतिशीलता में तीव्रता है। इस प्रकार देश की व्यवस्था में, सम्पन्नता में तेज और वेग दोनों विद्यमान हैं। हम जब उन्नति की ओर बढ़ते हैं तो हमारी गति न मंथर होती हैं और न ही तेजहीन होती है। मंथर गति भी राष्ट्र की उन्नति को स्थिर सा बना देती है। अतः मंत्र में जूतिमान् और तृषिमान् दोनों शब्दों का बड़ा भाव गर्भित प्रयोग हुआ। तेजस्वी होना और वेगवान होना बड़ा सुन्दर गुण हैं। हे मातृभूमि ! कभी-कभी कुछ ऐसे लोग भी निकल आते हैं जो हमसे, हमारे देश से अकारण ही शत्रुता करते हैं। कभी-कभी ऐसे भी पड़ोसी राष्ट्र होते हैं जो हमारी मधुर वाणी और मीठे व्यवहार को हमारी दुर्बलता समझकर हमसे शत्रुता करना चाहते हैं। हमारे प्राकृतिक साधनों का शोषण करते हैं और हमसे शत्रुता पाल लेते हैं। मातृभूमि में हममें तेज है, वेग है, हम शक्ति सम्पन्न हैं। शत्रुओं को हम मार डालते हैं और उन्हें नष्ट करके छोडते हैं।

मंत्र में एक भाव यह भी अन्तर्निहित है कि हम संसार के साथ प्रेम का व्यवहार करना चाहते हैं, प्रेम से बोलते हैं, सबको प्रेम से देखते हैं। हमारे इस तरह नम्रता और स्नेह भरे व्यवहार को हमारी निर्बलता समझकर यदि शत्रु हमारी हानि करना चाहते हैं तो आपके

पुत्र-पुत्री तेजस्वी है, बलवान हैं, वेगवान हैं, बिना किसी रुकावट के वे शीघ्रता पूर्वक ऐसे शत्रुओं पर प्रत्याक्रमण करके उन्हें तहस-नहस कर देते हैं।

मंत्र में बड़ी प्यारी सी शिक्षा है कि प्रेम से रहो, प्रेम से देखो और प्रेम से व्यवहार करो, किन्तु यदि कोई तुम्हें या तुम्हारे राष्ट्र को छेड़ता है या शत्रुता करता है तो उसे छोड़ो नहीं और उसे सदा-सदा के लिए समाप्त कर दो। स्वयं शत्रुता करो नहीं यदि कोई शत्रुता करे तो उसे समाप्त कर दो।

'स्वयं छेड़ो नहीं और कोई छेड़े तो उसे छोड़ो नहीं।'

*

मंत्र–५९

'शन्तिवा सुरभिः स्योना कीलालोध्नी पयस्वती ।
भूमिरधि ब्रवीतु मे पृथिवी पयसा सह ।।'

पदार्थः–

शान्तिवा=शान्तिवाली, शान्ति-सम्पन्न । सुरभिः=उत्तम गन्ध से सम्पन्न । (सुरभि गाय को भी कहते हैं) । स्योना=सुख देने वाली । कीलालोध्नी = अमृत जैसे दूध को या रस को अपने स्तनों या थनों में धारण करने वाली (कीलाल+ऊधस्=थनों में अमृत धारण करने वाली) पयस्वती=दूध से भरी हुयी दूधवाली । भूमिः=भूमिमाता, सभी प्राणियों को आश्रय देने वाली, (भवन्ति भूतानि यस्याम्) अधिब्रवीतु=बुलावे, पुकारे (गाय अपने बछड़े को; माता अपनी सन्तान को दूध पीने के लिए बुलाती हैं) । मे=हमारी । पृथिवी=विस्तृत या विस्तार वाली भूमि माता । पयसा=दूध । सह=साथ ।

विमर्श–मंत्र में एक विशेष बात यह है कि भूमिमाता को सुरभि विशेषण से बताया गया है । सुरभि का सामान्य अर्थ सुगंधवाली होता है। सुरभि गाय को भी कहा गया है । इस मंत्र में कई सारी उन्हीं विशेषताओं का वर्णन है जो एक सुन्दर स्वस्थ गाय के दूध में सुगन्ध पायी जाती है । गाय का दूध सुख देने वाला होता है । गाय के दूध में सुगन्ध पायी जाती है । गाय के थन में अनन्त के समान दूध भरा रहता है । इसीलिए वह पयस्वती, दूधवाली होती है । गाय के बछड़े का जब दूध पीने का समय होता है तो गाय अपने बच्चे को बुलाने के लिए एक विशेष प्रकार से रम्भाती है, शब्द करती है । गाय के बच्चे अपनी माँ की आवाज सुनकर दूध पीने के लिए माँ के पास दौड़ हुए आते हैं ।

ये सारी बातें मातृभूमि में भी होती हैं । जन्मभूमि के खेत, तालाब, बाग-बगीचे सभी कुछ सुन्दर लगते हैं । मनुष्य अपनी मातृभूमि को छोड़कर जब कहीं विदेश में जाता है, उस समय मातृभूमि की सुन्दरता एक-एक करके उसे स्मरण आती है और मनुष्य कह उठता है कि मेरी मातृभूमि स्वर्गोपम है । गाँव में, घर में, अपने देश में रहते हुए ये विशेषताएँ चिन्तन से, मन से थोड़ा ओझल सी रहती हैं ।

मंत्र कहता है कि हमारी मातृभूमि हम सबको शान्ति, सुख और सुगन्ध से भरा हुआ अमृत के समान दूध देती है । "पयस्" का एक अर्थ आप्यायित करने वाला, वर्धन करने वाला भी होता है ।

अपने देश में शान्ति, उन्नति, और देश के नागरिकों की सब प्रकार की उन्नति तब होती है जब देश में शान्ति, सुव्यवस्था पढ़ने-लिखने, उद्यम व्यवसाय करने की सारी सुविधा सुलभ होती है । ये सारी सुविधाएँ आन्तरिक रूप से शासन सुव्यवस्था चाहती हैं । और बाह्यरूप से सैनिक शक्ति और सुरक्षा इतनी सुदृढ़ हो कि देश के नागरिकों को विदेशों से किसी असुरक्षा या आक्रमण का भय न हो ।

मंत्र में यह कहा गया है कि मातृभूमि हमको अमृत के समान दूध आदि, फल, मूल, कन्द, अन्न इत्यादि सभी वस्तुएं देती रहे और आवश्यकता पड़ने पर हमें पुकारे, हमारा आह्वान करे और हम माता के आह्वान पर अपनी सुख-सुविधाएँ त्यागकर, जन्मभूमि की पुकार पर अपने सभी साधनों के साथ प्रस्तुत हो जाएँ, मातृभूमि पर आये हुए संकट को दूर करने के लिए अपने साधनों के साथ दौड़ पड़ें ।

*

मंत्र–६०

**'यामन्वैच्छद्धविषा विश्वकर्मान्तरर्णवे रजसि प्रविष्टाम् ।
भुजिष्यं पात्रं निहितं गुहा यदाविर्भोगे
अभयन्मातृमद्भ्यः ।।'**

पदार्थः–

याम्=जिस मातृभूमि को । अन्वैच्छत्=चाहते हैं । हविषा=हवि के द्वारा, त्याग के द्वारा । विश्वकर्मा=समस्त प्रकार के काम करने वाले । अर्णवे=समुद्र में । अन्तः=भीतर । रजसि=धूल में या अन्तरिक्ष में । प्रविष्टाम्=प्रविष्ट, स्थित । भुजिष्यं=भूमि, भोजन के योग्य । पात्रं=पेय पदार्थ, पात्र । निहितं=निहित, स्थित । गुहा=गुफा । यत्=जो । आविः=प्रकट । भोगे=भोग में । अभवत्=होता है । मातृमद्भ्यः=माता समझने वालों के लिए ।

विमर्श–किसी भी वस्तु को देखने के एक से अधिक प्रकार हो सकते हैं। उदाहरण के लिए हमारी जन्मदात्री जननी स्थूल, भौतिक रूप से देखें तो हाड़, मांस, मज्जा, रुधिर आदि से बना हुआ वैसा ही शरीर है जैसा संसार की और सब स्त्रियों का शरीर है । किन्तु जब हम अपनी माता में मातृत्व, वत्सलता, प्रेम की मूर्ति का भाव करके देखते हैं तो हमारी माता संसार की सभी स्त्रियों से भिन्न प्रेम और वत्सलता की मूर्तिमयी देवी लगती है । हम अपनी माता का अपमान, तिरस्कार आदि कुछ भी नहीं सह सकते । हम अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी अपनी माता की रक्षा करते हैं । यही मानसिक और आत्मिक भावधारा माता को देवी बना देती है । मातृभूमि क्या है ? विज्ञान के अनुसार दर्शनशास्त्रों ने हमें यह बताया है कि मिट्टी,

पत्थर आदि की बनी हुई हमारी मातृभूमि समुद्र के गर्भ से निकली है—"अद्भ्यः पृथिवी" । किन्तु इसी भूमि के साथ जब हमारा मानसिक और आत्मिक सम्बन्ध जुड़ जाता है तो यही अपनी मातृभूमि के साथ मानसिक और आत्मिक सम्बन्ध है—

"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"

जब जन्मभूमि के साथ हमारा मानसिक सम्बन्ध जुड़ जाता है, तो हम अपने देश के नागरिकों को अपने भाई-बहन के समान आत्मीयता से भरे-भरे भाव से देखने लगते हैं । संसार में सभी देशों में लोग बसते हैं । सभी देश के मनुष्य हाथ, पांव, नाक, कान की दृष्टि से एक जैसे ही होते हैं । किन्तु जब मातृभूमि की अपने देश की आत्मीयता का भाव जुड़ जाता है, तब अपने देश के प्रति हमारा भाव संसार के अन्य देशों से अलग हो जाता है । हमारी सेना, हमारे नदी, पहाड़, सैनिक, विद्यार्थी, उद्योगपति, व्यवसायी, यहां तक कि एक खिलाड़ी भी हमें अपने लगने लगते हैं । यही मातृभूमि की ममता है ।

देश के लोग अनेक प्रकार के कार्य करते हैं । कृषि, उद्योग, व्यवसाय, शासन-व्यवस्था, सेना-सुरक्षा, अध्ययन, अध्यापन, शोध अन्वेषण आदि अपने लगने लगते है । हमारी मातृभूमि से हमें खाने-पीने के अनेक पदार्थ धरातल पर और धरती के गर्भ से मिलने लगते हैं । हमारे देश में किसी प्रकार की कोई कमी नहीं रह जाती है ।

जब हम अपने राष्ट्र को मातृभूमि समझने लगते हैं तो हम उसके लिए अपना सर्वस्व, केवल भौतिक धन ही नहीं, भौतिक सम्पत्ति ही नहीं बल्कि अपना प्राण और शरीर भी त्यागने के लिए प्रस्तुत हो जाते हैं । अपनी माता के लिए, उसके सम्मान की रक्षा के लिए सपूत बनकर सब कुछ त्याग देने के लिए तैयार हो जाते हैं ।

*

मंत्र–६१

'त्वमस्यावपनी जनानामदिति: कामदुघा पप्रथाना ।
यत्त ऊनं तत्त आ पूरयाति प्रजापति: प्रथमजा ऋतस्य ।'

पदार्थ:–

त्वम्=तुम । अस्य=इसका । आवपनीं=बीज बोने की जगह । जनानाम्=मनुष्यों की । अदिति:=विनाशरहित । कामदुघा=कामनाओं को पूर्ण करने वाली । पप्रथाना=अत्यन्त विस्तृत । यत्=जो । ते=तुम्हारी तुममें । ऊनं=कभी । तत्=वह । आपूरयाति=पूरा कर देता है । प्रजापति:=प्रजा की रक्षा करने वाला परमेश्वर । प्रथमजा=सर्वप्रथम उत्पन्न होने वाली । ऋतस्य=सत्य का, नियमों का ।

विमर्श–यह मन्त्र मातृभूमि के गौरवगान में अत्यन्त भाव गर्भित है । धरती माता अन्न का बीज बोने, फल, मूल, कन्द उपजाने का सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान है । मनुष्य की प्रारम्भिक आवश्यकताओं में अन्न, वस्त्र और आवास प्रथम गिने जाते हैं । इनमें भी खाद्य पदार्थ सर्वप्रथम आते हैं—अन्न, फल, मूल, कन्द आदि खाद्य पदार्थ हैं । इनमें भी अन्न सर्वप्रथम आता है । अन्न के लिए कृषि करते हैं और कृषि का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य है बीजों को बोना । यह बीज-वपन पृथिवी के तल को जोत कर किया जाता है । इसी से राष्ट्र के मनुष्यों, नर-नारियों और अन्य प्राणियों का जीवन निर्वाह अच्छी तरह चलता है ।

हमारी भूमिमाता अदिति है, इसको कभी खण्डित-विखण्डित नहीं किया जा सकता । कितना भी बलवान शत्रु हो वह धरतीमाता को खण्डित नही कर सकता, क्योंकि यह अदिति (दो-अवखण्डने)है ।

अदिति का एक और भाव है । मनुष्य आदि प्राणी तो जनम -

मरण के चक्र में जीते-मरते रहते हैं—''पुनपरिजननम्, पुनरपिमरणम्'', मनुष्य की जीवन यात्रा, अन्य प्राणियों की भी जीवन यात्रा खण्डित होती रहती है, किन्तु यह धरती माता अखण्डनीय है । राष्ट्र और राजा भी बनते बिगड़ते रहते हैं, किन्तु धरती का कभी खण्डन नहीं होता, भूमिमाता का कभी नाश नहीं होता ।

हमारी मातृभूमि कामदुघा है । यह हमारी सब कामनाों को पूर्ण करने वाली है । धरती माता पर हम कृषि करते हैं, अन्न, फल, मूल उत्पन्न करते हैं, उद्योग-व्यवसाय के द्वारा, खनिज पदार्थों के द्वारा, हमारे लिए जो कुछ भी आवश्यक है वह धरती माता से प्राप्त कर लेते हैं ।

हमारी भूमिमाता पप्रथाना—अत्यन्त विस्तार वाली है (पृथु विस्तारे) । यह विस्तार भौतिक या भौगोलिक लम्बाई, चौड़ाई से ही नहीं है । पृथिवी का विस्तार हमारे पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, व्यापारिक आदि सभी कार्यों को पूर्ण करने में परिपूर्ण है ।

मन्त्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण बात यह कही गयी है कि धरती माता के विभिन्न प्रकार के उपयोगों से इसमें कभी-कभी न्यूनता भी आ जाती है । उदाहरण के लिए जब कृषि होती है तो धरती की उर्वरकता कम हो जातीं है । प्रजापति इस तरह की सभी न्यूनताओं को पूरा करते हैं । सूर्य की किरणें, जल की वृष्टि, धरती की न्यूनता को पूरा करके धरती को पुनः उपजाऊ बना देते हैं ।

प्रजापति परमेश्वर ही नहीं बल्कि राष्ट्र का राजा भी है । राजा केवल शासन ही नहीं करता वह प्रजाओं का पालन भी करता है और जो कुछ न्यूनता आती है, उसको पूरा भी करता है ।

मन्त्र में 'ऋतस्य प्रथमजा' पद का प्रयोग हुआ है । सामान्य रूप में ऋत का अर्थ सत्य, तीनों कालों में सदा रहने वाला होता है । परमेश्वर ने सर्वप्रथम अपने तप से ''ऋत-सत्य'' को उत्पन्न किया ।

''ऋतञ्च, सत्यञ्च, अध्यजायत'' सबसे पहले परमेश्वर ने 'ऋत और सत्य को उत्पन्न किया । यह प्रजापति परमेश्वर का कार्य हुआ ।'

राष्ट्र का राजा भी प्रजापति हैं । राजा को भी अपनी सारी शासन व्यवस्था का आधार सत्य को बनाकर चलना चाहिए ।कोई भी राजा असत्य, चालाकी, धूर्तता के आधार पर अपने शासन की व्यवस्था को अच्छी तरह नहीं चला सकता । अतः समझदार धार्मिक राजा अपनी शासन व्यवस्था, सत्य के आधार पर ही चलाता है । मन्त्र में राज्य व्यवस्था का भी उपदेश द्रष्टव्य है ।

*

मंत्र–६२

'उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः ।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ।।'

पदार्थः–

उपस्थाः=रहने वाले, होने वाले । ते=तुम्हारी । अनमीवा=नीरोग । अयक्ष्मा=यक्ष्मा रोग से रहित । अस्मभ्यं=हमारे लिए । सन्तु=होवें, बने रहें । पृथिवि=हे भूमिमाता । प्रसूताः=उत्पन्न होने वाले। दीर्घं=बड़ी, लम्बी । नः=हमारे लिए । आयुः=आयु । प्रतिबुध्यमाना=प्रबुद्ध होते हुए । वयं=हमलोग । तुभ्यं=तुम्हारे लिए । बलिहृतः=कर लाने वाले, उपहार देने वाले । स्याम=होवें ।

विमर्श–इस मंत्र में देश के नागरिक मातृभूमि से आकांक्षाएँ कर रहे हैं। देश में नागरिक तो होते ही हैं फिर अन्न, दूध, फल, मूल आदि खाद्य और औषधियों का निर्माण करने में सहायक, वनस्पतियाँ आदि भी होती हैं । देश में जलवायु सभी स्वास्थ्य के लिए आवश्यक होते हैं ।

मंत्र में नागरिक आकांक्षा कर रहा है कि हमारे देश में मनुष्य पशु, अन्न, दूध उपभोग के समान, हमारी जलवायु और हमारी वनस्पतियाँ, जो कुछ भी देश में उपस्थित हैं अथवा होवें सभी कुछ यक्ष्मा जैसे राजरोग और छोटे-मोटे दूसरे रोग कभी न पैदा करें । देश के सभी नागरिक, पशु-पक्षी नीगेग हों ।

हमारे देश के निवासी दीर्घायु वाले होवें । सामान्य रूप में मनुष्यों की आयु एक सौ वर्ष मानी जाती है, हम प्रार्थना करते हैं "जीवेम शरदः शतम्" हे भगवान् हमें सौ वर्षों का जीवन दीजिए ।

दीर्घायु में स्वस्थ, प्रसन्न, आयु की भावना निहित है । मंत्र जब दीर्घायु के लिए प्रार्थना करता है तो इसका अभिप्राय है कि शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य बना रहे ।

स्वस्थ दीर्घायु के लिए जहाँ व्यक्तिगत कर्त्तव्य है वहीं पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय, सरकारी दायित्व और कर्त्तव्य हैं । देखने में यह छोटी-सी प्रार्थना लगती है किन्तु इन सभी भावनाओं से भाव गर्भित प्रार्थना है ।

जब मातृभूमि के लिए इतनी प्रार्थनाएँ की जा रही हैं तो देशं के नागरिक का भी कर्त्तव्य है कि वे मातृभूमि के लिए अपनी ओर से बलि देने के लिए तत्पर रहें । बलिदान का अर्थ केवल शत्रुओं से लड़कर जीवन मिटा देना ही नहीं है, बलि का अर्थ पूजा करना, उपहार देना, सत्कार करना और सरकार को भी उचित कर (Tax) देना है । अतः देश का नागरिक मातृभूमि को कह रहा है कि हे माता हमें आशीर्वाद दो कि हम तुम्हारे लिए बलि देने के लिए सदा तत्पर रहें ।

*

मंत्र–६३

'भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् ।
संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम् ।।'

पदार्थः–

भूमे=हे भूमिमाता । मातः=हे माँ । निधेहि=रखो । मा=हमको । भद्रया=भद्रता से कल्याणमय होकर । सुप्रतिष्ठितम्=सुप्रतिष्ठित । संविदाना=संयुक्त, मिला हुआ । दिवा=प्रकाशमय देवलोक । कवे= ज्ञानी, प्रशंसनीय (Worthy of praise) । श्रियाम्=श्री में, कल्याण में । मा=हमको । धेहि=रखो । भूत्याम्=भूति में, कल्याण में ।

विमर्श–यह मंत्र इस सूक्त का अन्तिम मन्त्र है । राष्ट का नागरिक अपनी मातृभूमि से प्रार्थना कर रहा है कि हे भूमिमाता हमें अपने ऊपर, अपनी गोद में सुप्रतिष्ठा के साथ धारण करो । यह सुप्रतिष्ठा नागरिकों की अपनी व्यक्तिगत तथा सामाजिक हो सकती है, साथ ही विश्व के सभी राष्ट्रों में राष्ट्रीय प्रतिष्ठा भी हो सकती है ।

व्यक्ति की प्रतिष्ठा उसकी विद्या, सदाचार, धन, सम्पत्ति, ऐश्वर्य के कारण हो सकते हैं । यही सब तत्त्व सामाजिक प्रतिष्ठा के भी होते हैं । प्रतिष्ठित होने के लिए आवश्यक है कि किसी पदार्थ का अभाव न हो, साथ ही चरित्र में निर्मलता हो । इस मंत्र में भद्रता के साथ सुप्रतिष्ठित रहने की बात कही गयी है । भद्र का अर्थ होता है कल्याणकारी गुण, कर्म और स्वभाव । वेद में भद्र की परिभाषा की गयी है–

''सर्वम् तद् भद्रं यदवन्ति देवाः '' – भद्र की रक्षा देवगण स्वयं करते हैं । हम जब कोई कल्याणकारी, परोपकारी, अच्छा काम करते हैं तो हमारे चेहरे पर एक प्रकार की आभा (Glow) चमक

उठती है । यह भद्रता का लक्षण है । भद्र व्यक्ति का आभा मण्डल प्रकाशित रहता है । मन्त्र में भद्रता के साथ प्रतिष्ठित होने की बात कही गयी है ।

यह सुप्रतिष्ठा विश्व के राष्टों के परिवार के मध्य में अपने राष्ट्र की सुप्रतिष्ठा भी है । यह राष्ट्रीय प्रतिष्ठा नागरिकों के सदाचरण, सत्य, ईमान और ऐश्वर्य पर निर्भर करती है । बेईमान राष्ट्र, दुराचारी राष्ट्र कभी प्रतिष्ठित नहीं हो सकता । राष्ट्रीय प्रतिष्ठा, उद्योग व्यवसाय की उन्नति तथा वैज्ञानिक तकनीकी उन्नति और सैनिक सामर्थ्य पर निर्भर करती है । मन्त्र में प्रार्थना है कि हम और हमारा राष्ट्र सदा भद्रता के साथ सुप्रतिष्ठित रहे ।

हे मातृभूमि ! तुम सदा ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित रहना । राष्ट्र के निवासी ज्ञान-विज्ञान में सदा बढ़-चढ़ कर रहें, इसी से राष्ट्र के एश्वर्य की भी उन्नति होती है ।

मन्त्र में अन्तिम प्रार्थना यह की गयी है कि हे भूमिमाता ! तुम अपनी सन्तान को सदा श्री और भूति में बनाये रखना । श्री शोभा है, सम्पत्ति है, भूति ऐश्वर्य तथा सम्पन्नता है । श्री में आश्रय की बात संयुक्त है । सभी धन को श्री नहीं कहते हैं । जिस धन-सम्पत्ति ऐश्वर्य से दूसरों को आश्रय मिले, दूसरों की सेवा सहायता हो, वही सम्पत्ति ऐश्वर्य श्री और भूति है ।

इस मन्त्र का उपदेश यह बता रहा है कि राष्ट्र के नागरिक अपनी सम्पूर्ण व्यवस्था पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय ऐसी सुंन्दरता और योग्यता से बनावें कि राष्ट की यह सब आकांक्षाएँ परिपूर्ण होती रहें ।

*

उपसंहार

यह सर्वसम्मत अनुभव है कि अपनी माता और अपनी मातृभूमि के प्रति मनुष्य के हृदय में अनुपम प्यार, ममता, अपनत्व आदि भावनाएँ नैसर्गिक रूप में बनी रहती हैं । मनुष्य ममतामयी माता के शरीर से उत्पन्न होता है । शिशु का शरीर जननी के शरीर के रस, रक्त, मांस आदि से निर्मित होता है । स्वाभाविक है कि शिशु बड़ा होकर उसी माँ का दूध पीता है । वही मां उसकी देखभाल करती है । उसको अनेकानेक कामों की शिक्षा देती है । अतः यह बात समझ में आती है कि बच्चों को माता से सहज, स्वाभाविक स्नेह होता है ।

इसी प्रकार जन्मभूमि में उत्पन्न दूध, अन्न, फल, मूल खाकर हम बड़े होते हैं, जन्मभूमि की धूल में लोट-पोट कर हम बड़े होते हैं और अपने सामर्थ्य तथा क्षमता के अनुकूल अपने जीवन में हम उन्नति करते हैं । जैसे हमें अपनी जननी माता से प्यार और ममत्व होता है उसी प्रकार हमें अपनी जन्मभूमि से भी ममत्व और प्यार होता है । जन्मभूमि के सपूत बड़ी प्रसन्नता पूर्वक जन्मभूमि के सम्मान के लिए अपना जीवन हँसते-हँसते बलिदान कर देते हैं ।

यदि किसी माता का पुत्र निर्बल और असमर्थ हो और वह अपनी माता की देखभाल और परवरिश नहीं कर पा रहा हो तो वह मां अपमानित निर्धन जीवन बिताती है । इस प्रकार यदि जन्मभूमि के निवासी अपनी जन्मभूमि की प्रतिष्ठा और स्वतंत्रता की रक्षा नहीं कर पाते हैं तो वह देश अन्य देशों के सामने अपमानित हो जाता है और

कभी-कभी उसकी स्वतंत्रता भी छिन जाती है। ऐसे देश के नागरिक सम्मान के साथ सिर ऊँचा करके संसार में नहीं चल सकते। जैसे परिश्रमी, सच्चरित्र, उद्यमशील मनुष्य अपने परिवार की आजीविका चलाता है। उसी प्रकार सच्चरित्र, सत्यनिष्ठ, उद्यमशील नागरिक अपने देश को सम्मान पूर्वक रखते हैं।

इस सूक्त का प्रथम मन्त्र यह शिक्षा देता है कि नागरिकों के सत्य, परिश्रम, तेंज, तप आदि गुण मातृभूमि को धारण करते हैं। ऐसी मातृभूमि भूत, वर्तमान और भविष्य सबकी रक्षा करती है, सबका विस्तार करती है।

मातृभूमि का आँचल सभी नागरिकों को पर्याप्त सुविधा देता है और मातृभूमि में अनेक प्रकार के अन्न, फल, औषधि आदि राष्ट्र का पालन करते हैं। मातृभूमि में अनेक प्रकार के अन्नों को पैदा करने के लिए खेती होती है और उसी में प्राणी अपने पालन-पोषण, जीवन यापन की व्यवस्था बनाते हैं। घोड़े, पशु, पक्षी यहाँ सभी विद्यामान रहते हैं। मातृभूमि हिरण्यगर्भ है। यह सबका, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि का पालन करती है।

भूमि सूक्त में पृथिवी की उत्पत्ति का वर्णन बड़े सुन्दर रूप में दिया हुआ है। मातृभूमि से आशा की गयी है कि हमारे देश में मनीषी, विद्वान्, तेजस्वी लोग पैदा होवें। यहाँ भूचाल-भूकम्प का भय नहीं है।

मनुष्य समाज को पृथिवी, जल, वायु, आकाश, द्युलोक, अन्तरिक्ष लोक, सूर्य, चन्द्रमा आदि सभी बलवान् बनाते हैं। भूमि सूक्त पर्वत, वन, कृषि, खनिज, नदी, बर्फीले पहाड़ सबकी महिमा का गान करता है। इस सूक्त में बहुत सुस्पष्ट रूप से भूमि को माता के रूप में पुकारा गया है।

यह सूक्त मानव समाज में समन्वय, सामंजस्य की भावना से राष्ट्र के मानव संसाधन, कृषि, उद्योग, व्यवसाय का वर्णन करता है। जो भी देशी-विदेशी, कोई भी हमारे देश के साथ द्वेष बुद्धि रखता है उसको समूल मिटा देने की शिक्षा दी गयी है। इस सूक्त में जहाँ धर्म पूर्वक राष्ट्र के संचालन की शिक्षा है वहीं शत्रुओं को सर्वथा मिटा देने का आग्रह है।

राष्ट्र का मुख्य देवता अग्नि है। मनुष्यों में चरित्र का तेज, बुद्धि का तेज, सैनिकों में वीरता, पशु आदि संसाधनों में ओज-तेज सभी की अनुशंसा है। हमारे राष्ट्र में तेजस्वी, प्राणवान मनुष्य, पशु-पक्षी, अन्न-फल सभी सदा बने रहें। यहाँ तक कि हमारे देश की भौतिक सुगन्ध के साथ चारित्रिक सुगन्ध संसार में फैलती रहे। हमारी मातृभूमि धन-धान्य से भरपूर रहे।

भूमिमाता हमको निवास करने और जीवन के अनेक प्रकार के कार्यों को सम्पन्न करने के लिए स्थान तो देती ही है साथ ही हमारे शरीर को बल और प्राण शक्ति से सम्पन्न करती है। साथ ही पुष्टि-कारक अन्न, फल, घृत आदि से सम्पन्न बनाती है। भूमिमाता का अति शोधन कार्य भी है। यह हमारे शरीर को तो शुद्ध करती ही है साथ ही जलवायु आदि सबको पवित्र, निर्दोष बनाती है। भूमिसूक्त का उपदेश है कि हमारी राष्ट्रीय व्यवस्था में शान्ति, सुरक्षा, न्याय आदि का पूरा प्रबन्ध हो जिससे हमें दुष्ट, लुटेरे, आततायी, विदेशी लुटेरों आदि का भय न हो।

पृथिवी माता रत्नगर्भा, हिरण्यवक्षा भी है। पृथिवी के गर्भ में अनेक प्रकार के मूल्यवान खनिज विद्यमान हैं। हम भू-गर्भ से मूल्यवान खनिजों का दोहन तो करते हैं, किन्तु उसका शोषण नहीं

करते । माता का दूध पिया जाता है खून नही चूसा जाता । हमारी मातृभूमि में सब प्रकार की छहों ऋतुओं का चक्र चलता रहता है । हमारे राष्ट्र का राजा प्रजाओं की रक्षा करने वाला तथा सभी जनसाधारण को सुख देने वाला है । हमारा राष्ट्र केवल भौतिक नहीं है, आध्यात्मिक भी है । हमारे यहाँ वेद के मंत्रों का पाठ होता रहता है । हमारी मातृभूमि में सभामण्डप और यज्ञशालाएँ भी हैं । हमारे राष्ट्र के विद्वान् ब्राह्मण वेद मंत्रों द्वारा परमेश्वर का गुणगान करते रहते हैं । हमारे राष्ट्र में तेज और तप के साथ देवपूजन होता रहता है । हम जिस भी धन की कामना करते हैं मातृभूमि वह सब पूरा करती है ।

हमारे देश में जहाँ शूरवीर योद्धा हैं, जो मातृभूमि को शत्रु से रहित करके रखते हैं, वहीं हमारे राष्ट्र में आमोद-प्रमोद , नृत्य-गान आदि ललित कलाएं भी राष्ट्र के जीवन को हर्ष आनन्द से भरपूर रखती हैं । हमारी मातृभूमि हमारे राष्ट्र के नागरिकों को सुमन, मानसिक प्रसन्नता, धन, धान्य देती रहती है । हमारे राष्ट्र में अनेकों प्रकार के काम करने वाले लोग हैं, अनेकों प्रकार की बोलियाँ बोलते हैं । हजारों प्रकार से हमारी मातृभूमि धन-धान्य देती रहती है । हजारों प्रकार से हमारी मातृभूमि हमें धन धान्य से परिपूर्ण रखती है। हमारे राष्ट्र में यातायात के, परिवहन के सुन्दर मार्ग बने हुए हैं । इन पर रथ, वाहन, पैदल सब प्रकार के यात्री आते-जाते रहते हैं किन्तु कहीं भी चोर-डाकुओं का भय नहीं है, लोग सुखपूर्वक जीवन-यापन करते हैं । हमारे राष्ट्र में जंगली पशुओं, सिंह, बाघ, रीछ, भेड़िया आदि उपद्रवी पशुओं का भय नहीं है । हम प्रार्थना करते हैं कि जो विलासी पुरुष और स्त्रियाँ हैं या जो क्रूरवृत्ति वाले लोग हैं वे हमारे राष्ट्र में न रहें ।

इस सूक्त में मातृभूमि के नागिरकों को अपनी स्वतंत्रता और वीरता का, तेज और शौर्य का भूरपूर स्वाभिमान है । राष्ट्र भक्त नागरिक कहते हैं कि हम अपने विरोधी शत्रुओं को सब प्रकार से पराजित करने में समर्थ हैं । किसी भी दिशा से कोई भी आक्रन्ता आवे, हम सबको कुचल देतें हैं । संसार के सभी राष्ट्रों में, गाँवों में सभा समितियों में हमारे राष्ट्र का गुणगान किया जाता है । हमारा राष्ट्र संसार का नेता और राष्ट्रों का रक्षक है । हमारे देश के सभी नागरिक मातृभूमि को अपनी माता के समान सम्मान देते हैं । हमारे देश के नागरिक मातृभूमि के लिए हमेशा कर देने के लिए और अपना स्वयं का बलिदान देने के लिए सदा तैयार रहते हैं और मातृभूमि से प्रार्थना करते हैं कि हे मातृभूमि ! हमें सदा प्रतिष्ठा मिलती रहे और हम सदा सर्वदा तुम्हारे आश्रय में धन-सम्पत्ति और ऐश्वर्य के स्वामी बनकर सदा आनन्दित रहें ।

*

प्रो० उमाकान्त उपाध्याय

द्वारा लिखित पुस्तक

वेद सम्बन्धी साहित्य :-

(१) प्रार्थना प्रवचन—विश्वानि देव आदि प्रार्थना मंत्रों की विस्तृत हृदयग्राही ललित व्याख्या ।

(२) वेद-वैभव—चुने हुए वेद मन्त्रों की विस्तृत व्याख्या ।

(३) वेद-वन्दन—चुने हुए वेद मंत्रों की प्रवचनात्मक व्याख्या ।

(४) शयन से पूर्व प्रार्थना—शिव संकल्प मंत्रों का भाव गर्भित व्याख्यान् ।

(५) वेद-वीथिका—वेद मंत्रों के शब्दार्थ, व्याख्या बिन्दु और संक्षिप्त व्याख्या ।

(६) ऋ०भा०-भू०-राजप्रजाधर्म प्रबोध भाष्य—ऋषि भाष्य की व्याख्या ।

(७) वेद और स्वामी दयानन्द—स्वामी जी के मन्तव्यों पर पठनीय पुस्तक ।

(८) वेदों में गोरक्षा या गोवध—गोरक्षा पर प्रभूत प्रमाणों का संकलन ।

(९) प्रभात वन्दन—प्रातःकालीन पठनीय मंत्रों की विस्तृत व्याख्या ।

(१०) मातृभूमि वैभवम्—पृथिवीसूक्त विमर्श—पृथिवी सूक्त के मंत्रों पर विमर्श ।

अन्य विषयक पुस्तकें –

(११) आर्य समाज कलकत्ता का शतवर्षीय इतिहास ।

(१२) आर्य समाज बड़ाबाजार का शतवर्षीय इतिहास ।

(१३) युग निर्माता सत्यार्थ प्रकाश सन्दर्भ दर्पण ।

(१४) व्यतीत के यश की धरोहर (महासम्मेलनों के संस्मरण)

(१५) Understanding Satyarth Prakash

(१६) बंगाल में शास्त्रार्थ

(१७) आर्य समाज कलकत्ता द्वि०श० रजत इतिहास

(१८) आर्य समाज—परिचय और प्रासंगिकता

(१९) प्रचार के प्रेरक संस्मरण

लघु पुस्तकें—

(१९) प्रचार कें प्रेरक संस्मरण

(२०) आर्य समाज से परिचय

(२१) काशी शास्त्रार्थ—एक समीक्षा

(२२) धर्म सम्प्रदाय और सेक्यूलरिज्म

(२३) योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण

(२४) श्रावणी उपाकर्म

(२५) मूर्त्ति पूजा समीक्षा

(२६) श्राद्ध तर्पण

(२७) अर्थ शौच

(२८) इस्लामत की मिथ्या वाणी

(२९) कम्युनिस्टों के मोर्चे पर स्वामी दयानन्द

(३०) कर्मकाण्ड

(३१) लगभग ४५-४५ महत्वपूर्ण पुस्तकों का सम्पादन

लेखक का परिचय :

जन्म—३१ दिसम्बर, १९३१ ई०,

जन्म स्थान—ग्रा०-पो० झौआरा, जि० सुलतानपुर (उ० प्र०)

शिक्षा—संस्कृत व्याकरण और साहित्य का यथेष्ट अध्ययन करके अर्थ शास्त्र में एम. ए., कलकत्ता विश्वविद्यालय ।

दीक्षा—पितृ-चरण नागेश्वर प्रसाद उपाध्याय एवम् आचार्य-चरण अग्रज रमाकान्त शास्त्री से जीवन साधना में दीक्षित होकर महर्षि, वेद एवम् आर्य समाज के लिये सर्वात्मना समर्पित ।

पुरस्कार :

१) घूड़मल प्रह्लाद कुमार पुरस्कार, हिण्डोन सिटी (राजस्थान)

२) मेघजी भाई आर्य साहित्य पुरस्कार, आर्य समाज सान्ताक्रुज, मुम्बई

३) पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय पुरस्कार, प्रयाग ।

विदेश-प्रचार :

१) १९७६ ई० में योरोप, अमेरिका, कनाडा आदि देशों की यात्रा तथा जिनेवा, स्विट्ज़रलैंड में आर्य समाज की स्थापना ।

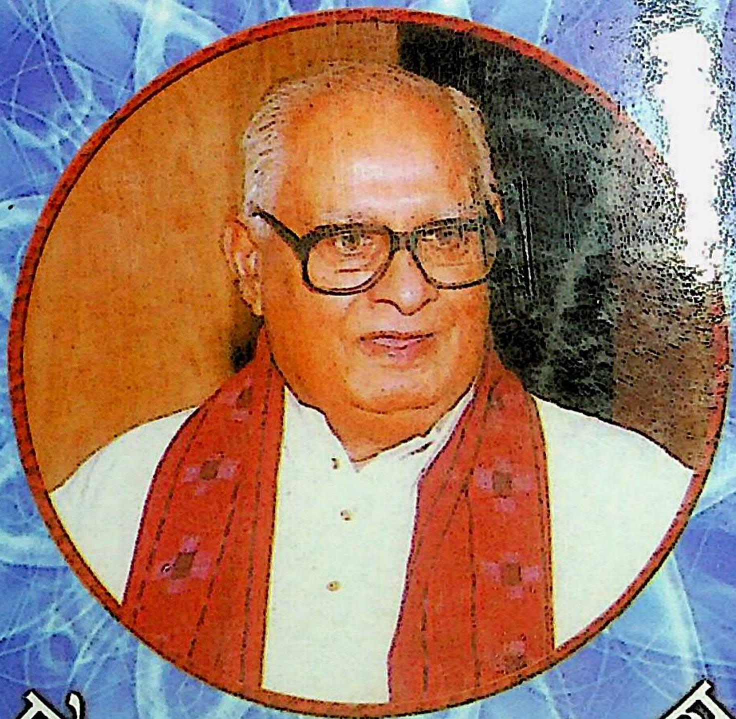
२) १९७८ ई० में केन्या की राजधानी नैरोबी में अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन में प्रतिष्ठित प्रतिनिधित्व ।

३) १९८० ई० में अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन, लन्दन, में सर्व-धर्म सम्मेलन में आर्य समाज का ख्याति प्राप्त प्रतिनिधित्व ।

४) २००१ ई० में इंग्लैंड में आर्य समाज बर्मिंघम में रेडियो पर १५-२० प्रवचन एवं समाज में प्रचार ।

आर्य समाज कलकत्ता के मासिक पत्र "आर्य संसार" का पिछले ५४ वर्षों से सम्पादन । इसी प्रसंग में लगभग ४० महत्त्वपूर्ण एवम् दुर्लभ पुस्तकों का सम्पादन ।

मातृभूमि वैभवम्



प्रो० उमाका[illegible]पाध्याय